अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार

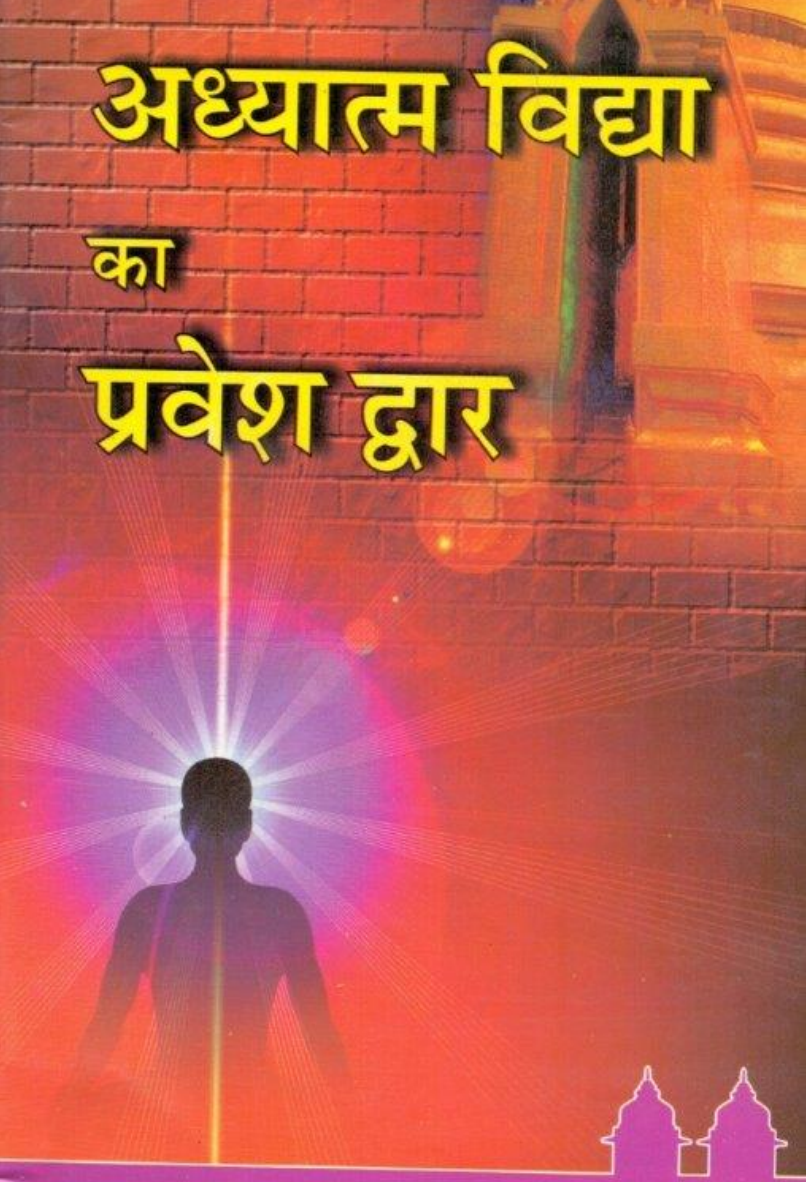

॥ ॐ ॥

अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार

*

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : १०.०० रुपये

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनर्मुद्रित सन् **२०१०**

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस-मथुरा

भूमिका

किसी स्थान पर जाने के लिए कदम बढ़ाने से पूर्व उसकी जानकारी आवश्यक है। जब तक यह न मालूम हो कि गंतव्य स्थान की रूपरेखा क्या है ? वहाँ जाने का प्रयोजन क्या है ? तब तक यात्रा सफल नहीं हो सकती है। प्राय: सभी पथिक आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं, पश्चात् अपना कदम आगे बढ़ाते हैं।

अध्यात्म पथ पर अग्रसर होने वाले पथिकों के लिए भी यह आवश्यक है कि वे तत्संबंधी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लें। ईश्वर प्राप्ति, मुक्ति और परलोक का सुख, प्राय: यही कामनाएँ इस पथ के पथिकों को होती हैं। इन्हीं कामनाओं से प्रेरित होकर वे इस पथ पर चलना आरंभ करते हैं, परंतु देखा गया है कि कितने ही पथिकों को अपने गंतव्य स्थान के संबंध में, लक्ष्य के संबंध में, पर्याप्त जानकारी नहीं होती। जो होती है उसमें अधिकांश मात्रा में भ्रम सम्मिश्रित रहता है।

यह पुस्तक अध्यात्म मार्ग के पथिकों की इस कठिनाई को दूर करेगी। ईश्वर, मुक्ति और परलोक की रूपरेखा क्या है ? उन्हें प्राप्त करना क्यों आवश्यक है ? उनके प्राप्त करने का प्रयोजन क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक द्वारा भली प्रकार मिल जाएगा और पाठक अभीष्ट पथ पर दृढ़ता तथा उत्साह के साथ कदम बढ़ा सकेंगे। साधना के पथ पर बढ़ने से पहले इस पुस्तक को मनन करने से पाठकों का विश्वास क्षेत्र स्वच्छ तथा पुष्ट होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

अध्याय		*पृष्ठ संख्या*
१.	चतुर्मुखी ब्रह्म	५
२.	ब्रह्म	५
३.	ईश्वर	८
४.	विष्णु	११
५.	भगवान	१७
६.	परलोक कहाँ है ? भू:लोक	२२
७.	भुव:लोक	३३
८.	स्व:लोक	४५

***

अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार

चतुर्मुखी ब्रह्म

ब्रह्माजी की मूर्तियों में हम उनके चार मुख देखते हैं। यह चतुर्मुखी ब्रह्मा—परमात्मा की सत्ता का एक अलंकारिक चित्र है। चार मुख उसके चार भेदों का दिग्दर्शन कराते हैं। इन चार मुखों को (१) ब्रह्म, (२) ईश्वर, (३) विष्णु, (४) भगवान कहा जाता है। यह एक ही महातत्त्व है, तो भी समझने की सुविधा के लिए उसका चार भेदों के साथ वर्णन किया गया है।

(१) ब्रह्म

सात्त्विकता की ऊँची कक्षा को ब्रह्म कहते हैं। वैसे तो परमात्मा सत्, रज, तम तीनों गुणों में मौजूद है, पर उसकी ब्राह्मी ज्योति सतोगुण में ही है। सात्त्विक भाव, ब्रह्म केंद्र से ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मन में यों तो अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, पर जब सतोगुणी आकांक्षाएँ उत्पन्न होती हैं तो उनका उद्गम केंद्र, प्रेरक बिंदु वह ब्रह्म ही होता है। ऋषियों में, महात्माओं में, संतों में, सत्पुरुषों में हम परमात्मा का अधिक अंश देखते हैं, उन्हें परमात्मा के समीप समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि परमात्मा की उन पर कृपा है। परमात्मा की विशेष सत्ता उनमें मौजूद है। इसका प्रमाण यही है कि उनमें सत् तत्त्व अधिक मात्रा में मौजूद है। यह सत् का आधिक्य ही ब्राह्मी स्थिति है। पूर्ण सात्त्विकता में जो अधिष्ठित हो जाते हैं, वे ब्रह्म निर्वाण प्राप्त कहे जाते हैं।

मनुष्य की अंतःचेतना प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग से बनी हुई है। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार प्रकृति के भौतिक तत्त्व द्वारा

निर्मित हैं। जो कुछ हम सोचते, विचारते, धारण या अनुभव करते हैं, वह कार्य मस्तिष्क द्वारा होता है। मस्तिष्क की इच्छा, आकांक्षा, रुचि तथा भावना इंद्रिय रसों तथा सांसारिक पदार्थों की भली-बुरी अनुभूति के कारण ही होती है। मस्तिष्क में जो कुछ ज्ञान, गति और इच्छा है, वह सांसारिक, स्थूल पदार्थों के आधार पर ही बनती है। स्वयं मस्तिष्क भी शरीर का एक अंग है और अन्य अंगों की तरह वह भी पंचतत्त्वों से, प्रकृति से बना हुआ है। इस अंत:करण चतुष्टय से परे एक और सूक्ष्म चेतना केंद्र है, जिसे आत्मा या ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म सात्त्विकता का केंद्र है। आत्मा में से सदा ही सतोगुणी प्रेरणाएँ उत्पन्न होती हैं। चोरी, व्यभिचार, ठगी, हत्या आदि दुष्कर्म करते हुए हमारा दिल धड़कता है, कलेजा काँपता है, पैर थरथराते हैं, मुँह सूखता है, भय लगता है और मन में तूफान-सा चलता है, भीतर-ही-भीतर एक सत्ता ऐसा दुष्कर्म करने से रोकती है। यह रोकने वाली सत्ता आत्मा है। इसी को ब्रह्म कहते हैं। असात्त्विक कार्य, नीचता, तमोगुण, पाप और पशुता से भरे हुए कार्य उसकी स्थिति से विपरीत पड़ते हैं। इसलिए उन्हें रोकने की प्रेरणा होती है तथा यह प्रेरणा शुभ-सतोगुणी पुण्य कर्मों को करने के लिए भी उत्पन्न होती है। कीर्ति से प्रसन्न होने का मनुष्य का स्वभाव है और यह स्वभाव अच्छे-अच्छे, प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म करने के लिए प्रोत्साहन करता है। शुभ कर्मों से यश प्राप्त होता है और यश से प्रसन्नता होती है। यश न भी मिले तो भी सत्कर्म करने के उपरांत अंतरात्मा में एक शांति अनुभव होती है। यह आत्मतृप्ति इस बात का प्रमाण है कि अंत:करण की अंतरंग आकांक्षा के अनुकूल कार्य हुआ है। दया, प्रेम, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, उपकार, सेवा, सहायता, दान, ज्ञान, विवेक की सुख शांतिमयी इच्छा तरंगें आत्मा में से ही उद्‌भूत होती हैं। यह उद्‌गम केंद्र ब्रह्म है।

वेदांत दर्शन ने सारी शक्ति के साथ यही प्रतिपादित किया है कि आत्मा ही ईश्वर है। 'तत्त्वमसि', 'सोऽहम्', 'अयमात्मा ब्रह्म' सरीखे सूत्रों का अभिप्राय यही है कि आत्मा ही ब्रह्म है। ईश्वर का प्रत्यक्ष अस्तित्व अपनी आत्मा में देखना ही वेदांत की साधना है। अन्य ईश्वर भक्त भी अंत:करण में परमात्मा की झाँकी करते हैं। असंख्य कविताएँ एवं श्रुति वचन ऐसे उपलब्ध होते हैं, जिनमें यह प्रतिपादन किया गया है कि बाहर ढूँढ़ने से नहीं, अंदर ढूँढ़ने से परमात्मा मिलता है। संत कबीर ने कहा है कि परमात्मा हम से चौबीस अंगुल दूर है। मन का स्थान मस्तिष्क और आत्मा का स्थान हृदय है। मस्तिष्क से हृदय की दूरी २४ अंगुल है। इस प्रतिपादन में भी ईश्वर को अंत:करण में स्थित बताया गया है।

मनुष्य दैवी और भौतिक तत्त्वों से मिलकर बना है। इसमें मन भौतिक और आत्मा दैवीतत्त्व है। आत्मा के तीन गुण हैं—सत्, चित् और आनंद। वह सतोगुणी है, श्रेष्ठ शुभ, दिव्य भाग की ओर प्रवृत्ति वाला एवं सतत-हमेशा रहने वाला अविनाशी है। चित्-चैतन्य, जागृत, क्रियाशील, गतिवान है, किसी भी अवस्था में वह क्रिया रहित नहीं हो सकता। आनंद-प्रसन्नता, उल्लास, आशा तथा तृप्ति उसका गुण है। आनंद की दिशा में उसकी अभिरुचि सदा ही बनी रहती है। आनंद, अधिक आनंद, अति आनंद उपलब्ध करना उसके लिए वैसा ही प्रिय है जैसा मछली के लिए जल। मछली जल मग्न रहना चाहती है। आत्मा को आनंद मग्न रहना सुहाता है। सत्, चित्, आनंद गुण वाली आत्मा हर एक के अंत:करण में अधिष्ठित है। मन और आत्मा में जैसे-जैसे निकटता होती जाती है वैसे-ही-वैसे मनुष्य अधिक सात्त्विक, अधिक क्रियाशील और अधिक आनंद मग्न रहने लगता है। योगीजन ब्रह्म प्राप्ति के लिए साधना करते हैं।

इस साधना का कार्यक्रम यह होता है कि आत्मा की प्रेरणा के अनुसार मन की सारी इच्छा और कार्य प्रणाली हो। भौतिक पदार्थों के नाशवान, अस्थिर और हानिकर आकर्षणों की ओर से मुँह मोड़कर जब आत्मा की प्रेरणा के अनुसार जीवन चक्र चलने लगता है, तो आदमी साधारण आदमी न रहकर महान आदमी बन जाता है। ऐसे महापुरुषों के विचार और कार्य सात्त्विकता, चैतन्यता और आनंददायक स्थिति से परिपूर्ण होते हैं। उन्हें संत, महात्मा, योगी, तपस्वी, परमहंस, सिद्ध, आत्मदर्शी या ब्रह्म परायण कहते हैं। जिनका ब्रह्म भाव, आत्म विकास, पूर्ण सात्त्विकता तक विकसित हो गया है, समझना चाहिए कि उनने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया, उन्हें आत्मदर्शन हो गया।

(२) ईश्वर

इस समस्त विश्व के मूल में एक शासक, संचालक एवं प्रेरक शक्ति काम करती है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह निरंतर अपनी नियत चाल से अविश्रांत यात्रा जारी रखे हुए हैं। तत्त्वों के सम्मिश्रण से एक नियत व्यवस्था के अनुसार तीसरा पदार्थ बन जाता है। बीज अपनी जाति के पौधे उत्पन्न करता है, सूर्य एक पल का विलंब किए बिना ठीक समय पर उदय और अस्त होता है, समुद्र के ज्वार-भाटे नियत समय पर आते हैं। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश की सब क्रियाएँ अचूक हैं। नन्हे-नन्हे अदृश्य परमाणु अत्यंत द्रुतगति से हरकत करते हैं, पर उनकी इस गति में रंच मात्र भी अंतर नहीं आता। एक परमाणु को दूसरे परमाणु से लड़ाने का रहस्य खोज कर वैज्ञानिकों ने प्रलंयकारी 'परमाणु बम' बनाए हैं। यदि यह एक सेकंड में हजारों मील की गति से घूमने वाले परमाणु आपस में लड़ जाया करते तो आए दिन प्रलय उपस्थित हो जाया करती, परंतु हम देखते हैं कि प्रकृति का हर एक परमाणु अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ठीक प्रकार नियंत्रित कर रहा है।

यदि सृष्टि में नियमितता न होती तो एक भी वैज्ञानिक आविष्कार सफल न होता। आग कभी गर्मी देती, कभी ठंडक तो भला उसके भरोसे कोई काम कैसे होता। नित्य अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, इनका आधार इसी पर निर्भर है कि प्रकृति की दृश्य एवं अदृश्य शक्तियाँ अपने नियत नियमों से रंच मात्र भी विचलित नहीं होतीं। यह सर्वविदित तथ्य है कि प्रकृति की समस्त क्रिया-प्रणाली नियमित है, उसके मूलभूत नियमों में कभी अंतर नहीं पड़ता।

इस नियमितता और गतिशीलता के मूल में एक सत्ता अवश्य है। विचार और प्राण से रहित जड़ प्रकृति अपने आप इस क्रियाकलाप को नहीं चला सकती। रेल, मोटर, इंजन, हवाई जहाज, तलवार, कलम आदि जितने भी निर्जीव यंत्र हैं, उनको चलाने वाला कोई-न-कोई सजीव प्राणी अवश्य होता है, इसी प्रकार प्रकृति की नियमितता और गतिशीलता का उद्‌गम केंद्र भी कोई-न-कोई अवश्य है। इस केंद्र को हम ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ है—स्वामी। जड़ प्रकृति के निर्माण, व्यवस्था एवं संचालन में जो शक्ति काम करती है, वह ईश्वर है।

केवल जड़ प्रकृति का ही नहीं, चेतन जगत का भी वह पूरी तरह नियमन करती है। इसने अपने नियमों के अंतर्गत प्राणिमात्र को बाँध रखा है। जो उस ईश्वर के अनुसार चलते हैं, वे सुखी रहते हैं, विकसित होते हैं और जो उन नियमों को तोड़ते हैं, वे दुःख पाते और हानि उठाते हैं। स्वास्थ्य के नियमों पर चलने वाले सदाचारी, संयमी, मिताहारी लोग स्वस्थ रहते हैं और चटोरे, दुराचारी, स्वेच्छाचारी लोग बीमारी, कमजोरी एवं अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वाले ईश्वरीय नियमों का ठीक प्रकार

पालन करते हैं, वे उन क्षेत्रों में स्वस्थता, समृद्धि एवं उन्नति प्राप्त करते हैं और जो उन नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हैं वे उन क्षेत्रों में दुष्परिणाम भुगतते हैं। पराक्रम, पुरुषार्थ, प्रयत्न, लगन, साहस, उत्साह एवं धैर्य, यह सब सफलता के मार्ग की ईश्वरीय पगडंडियाँ हैं। इन पर जो चलते हैं, वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। जो इस राजमार्ग पर नहीं चलते, वे पिछड़ जाते हैं।

ईश्वर पूर्णतया निष्पक्ष, न्यायकारी नियम रूप है। वह किसी के साथ रत्तीभर भी रू-रियायत नहीं करता। जो जैसा करता है, वह वैसा भोगता है। अग्नि या बिजली के नियमों के अनुसार यदि उनसे काम लिया जाए तो वे हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं, पर यदि अग्नि का या बिजली का दुरुपयोग किया जाए तो वह भयंकर दुर्घटना उपस्थित कर देती हैं। इस प्रकार जो लोग ईश्वरीय नियमों के अनुसार काम करते हैं, उनके लिए ईश्वर वरदाता, त्राता, रक्षक, सहायक, कृपासिंधु, भक्त वत्सल है, पर जो उसके नियमों में गड़बड़ी करता है, उसके लिए वह यम, काल, शंकर, वज्र एवं दुर्दैव बन जाता है। मनुष्य को स्वतंत्र बुद्धि देकर ईश्वर ने उसे काम करने के लिए स्वच्छंद अवश्य बना दिया है, पर नियमन अपने ही हाथ में रखा है। वह जैसे को तैसा फल दिए बिना नहीं छोड़ता। आग और लकड़ी के इकट्ठा होने पर ईश्वरीय नियमों के अनुसार जो ज्वलन क्रिया होगी, उसे रोकना अपने बस की बात नहीं है। इसी प्रकार शुभ-अशुभ कर्म करना तो हमारे अपने हाथ में है, पर उससे जिन भले-बुरे परिणामों की उत्पत्ति होगी, वह ईश्वरीय नियामक शक्ति के हाथ में है।

जैन और बौद्ध, कर्म के फल की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, अतएव वे ईश्वर को, ब्रह्म की द्वितीय सत्ता को मानते हैं। सत्कर्म

करना, प्रकृति के कठोर अपरिवर्तनशील नियमों का ध्यान रखना, अपने आचरणों और विचारों को ईश्वरीय नियमों की मर्यादा में रखना, ईश्वर पूजा है। अपनी योग्यता और शक्तियों को समुन्नत करना, बाहुबल के आधार पर आगे बढ़ना, अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना ईश्वरवादियों का प्रधान स्वभाव होता है; क्योंकि वे जानते हैं कि सबलों, क्रियाशीलों और जागरुकों को बढ़ाना और कमजोर, अकर्मण्यों एवं असावधानों को नष्ट करना प्रकृति का नियम है। इस कठोर नियम में किसी के बूते कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। ईश्वरवादी इस नग्न सत्य को भली-भाँति जानते हैं कि— "ईश्वर उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है।" इसलिए वे ईश्वरीय कृपा प्राप्त करके उसके नियमों से लाभ उठाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं, आत्मनिर्भर और आत्मावलंबी होते हैं। अपने भाग्य का आप निर्माण करते हैं। ईश्वरीय नियमों को ध्यानपूर्वक देखते, परखते और हृदयंगम करते हैं तथा उनकी वज्रोपम कठोरता एवं अपरिवर्तनशीलता का ध्यान रखते हुए अपने आचरणों को औचित्य की, धर्म की सीमा के अंतर्गत रखते हैं।

यदि तुम संसार में कुछ करना चाहते हो तो महानता के विचारों को ही सदा सर्वदा मस्तिष्क में संग्रह करो। तुम्हारे मस्तिष्क में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। तुम दुर्भाग्य की ठोकरें खाने के लिए उत्पन्न नहीं हुए हो।

(३) विष्णु

संसार में एक संतुलन शक्ति भी काम कर रही है, जो किसी वस्तु की अतिवृद्धि को रोककर उसे यथास्थान ले आती है। संसार की सुंदरता और वैभवशीलता को वह कुरूपता और विनाश से बचाती है। प्रजनन शक्ति को ही लीजिए। एक-एक जोड़ा कई-कई बच्चे पैदा

करता है, यदि यह वृद्धि पीढ़ी-दर-पीढ़ी निर्बाध गति से चलती रहे तो थोड़े ही दिन में सारी पृथ्वी इतनी भर जाए कि संसार में प्राणियों को खड़ा होने के लिए भी जगह न मिले। मछली एक वर्ष में करीब सत्रह हजार अंडे देती है, मक्खी, मच्छर जैसे कीट-पतंग एक हजार से लेकर साठ हजार तक अंडे प्रतिवर्ष देते हैं। वे अंडे एक-दो सप्ताह में ही पककर बच्चे की शक्ल में आ जाते हैं और फिर दो-चार हफ्ते बाद ही वे भी अंडे देने लगते हैं। इनकी एक ही साल में प्राय: आठ पीढ़ी हो जाती हैं, यदि यह सब बच्चे जीवित रहे तो दस-पाँच साल में ही सारा संसार उनमें से एक जाति के रहने के लिए भी पर्याप्त न रहेगा। चींटी, दीमक, टिड्डी आदि कीड़े भी बड़ी तेजी से बढ़ते हैं। सुअर, बकरी आदि भी तेजी से प्रचुर संतान वृद्धि करते हैं। एक जोड़ा स्त्री-पुरुष भी औसतन आठ-दस बच्चे पैदा करता है। यह अभिवृद्धि यदि न रुके तो संसार के सम्मुख दस-पाँच वर्ष में ही बड़ी विकट परिस्थिति उत्पन्न होकर खड़ी हो सकती है, परंतु लाखों-करोड़ों वर्ष प्राणियों को इस पृथ्वी पर पैदा हुए हो गए, ऐसी परिस्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं हुई, सृष्टि की संतुलन शक्ति उस विषमता को उत्पन्न होने से रोके रहती है। दुर्भिक्ष, भूचाल, महामारी, युद्ध तथा किसी-न-किसी दैवी प्रकोप द्वारा प्राणियों की प्रजनन शक्ति से उत्पन्न होने वाले खतरे का निराकरण करती रहती है।

रात्रि का अंधकार एक सीमा तक बढ़ता है। उस बाढ़ को प्रकृति रोकती है और पुन: दिन का प्रकाश लाती है। मध्याह्न तक सूर्य की तेजी बढ़ती है, फिर वह घटने लगती है। समुद्र में ज्वार आते हैं, फिर थोड़े समय बाद उसका प्रतिरोधी भाटा आता है। चंद्रमा घटते-घटते क्षीण होता है, फिर बढ़ने लगता है। गरमी के बाद सरदी और सरदी के बाद गरमी का मौसम आता है। मरने वाला

जन्मता है और जन्मने वाला मृत्यु की तैयारी करता है। सृष्टि के सौंदर्य का क्रम यथावत् चला आता है, उसका बैलेंस बराबर कायम रहता है, संतुलन बिगड़ने नहीं पाता।

पुराणों में ऐसे वर्णन हैं कि देवताओं को जब असुर सताते हैं तो वे इकट्ठे होकर विष्णु भगवान के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए। कई पुराणों में ऐसी कथाएँ मिलती हैं कि पृथ्वी पर जब अधर्म बढ़ा तो धरती माता गौ का रूप धारण कर विष्णु भगवान के पास गई और प्रार्थना की कि अब मुझसे पाप का बोझ नहीं सहा जाता, मेरा उद्धार कीजिए। देवताओं की रक्षा करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं। गीता में भी ऐसी ही प्रतिज्ञा है—(यदा-यदा हि धर्मस्य--तदात्मानम् सृजाम्यहम्)। बुराइयों में वह गुण है कि वे आसानी से और तेजी के साथ बढ़ती हैं। पानी ऊपर से नीचे की ओर बड़ी तेजी से स्वयंमेव दौड़ता है, पर यदि उसे नीचे से ऊपर चढ़ाना हो तो बड़ा प्रयत्न करना पड़ेगा। पत्थर को ऊपर से नीचे की ओर फेकें तो जरा से संकेत के साथ वह तेजी से नीचे गिरेगा और अगर बीच में कोई रोकने वाली चीज न आए तो सैकड़ों मील नीचे गिरता चला जाएगा, परंतु यदि उस पत्थर को ऊपर फेंको तो बड़ा जोर लगाकर फेंकना पड़ेगा, सो भी थोड़ी ऊँचाई तक जाएगा फिर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार बुराई के मार्ग पर, पतन की ओर मन तेजी से गिरता है, पर अच्छाई की ओर कठिनाई से चढ़ता है। लोगों का झुकाव पाप की ओर अधिक होने के कारण थोड़े ही समय में पाप छा जाता है, फिर उसे दूर करने के लिए संतुलन ठीक करने के लिए इस विष्णु शक्ति को किसी-न-किसी रूप में प्रकट होना पड़ता है, उस प्राकट्य को 'अवतार' कहते हैं।

शरीर में रोगों के विजातीय विषैले परमाणु इकट्ठे हो जाने पर रक्त की जीवनी शक्ति उत्तेजित होती है और उन विषैले परमाणुओं को मार भगाने के लिए युद्ध आंरभ कर देती है। रक्त के श्वेत कणों और रोग कणों में भारी मारकाट मचती है, खून-खच्चर होता है। इस संघर्ष को बीमारी कहते हैं। बीमारी में पीड़ा, फोड़ा, पीब, पसीना, दस्त, उल्टी, जलन आदि के लक्षण होते हैं। युद्ध में चोट लगती है, दरद होता है, यही बीमारी की पीड़ा है, खून खच्चर होता है, यही पीब, दस्त आदि हैं। बीमारी का प्रयोजन शरीर को निर्दोष बनाना है। अवतार शक्ति का भी यही कार्य होता है। जब रावण, कंस, हिरण्यकश्यपु सरीखे कुविचारों के प्रतिनिधि अधिक बढ़ जाते हैं तो पापों की प्रतिक्रिया स्वरूप अंतरिक्ष लोकों में हलचल मचती है और उस विषमता को हटाने के लिए अवतार प्रकट होता है। जब ग्रीष्म ऋतु का ताप असहाय हो जाता है तो उसे शांत करने के लिए मेघ मालाएँ गरजती हुई चली जाती हैं। पापों की अति वृद्धि का नियमन करने के लिए वैष्णवी सत्ता अवतार धारण करके प्रकट होती है और भीषण संघर्ष उत्पन्न करके शांति स्थापित करती है। 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' अवतार का यही उद्देश्य होता है। धर्म की संस्थापना के लिए वह बार-बार प्रकट होता है।

अवतार समष्टि आत्मा का, परमात्मा का प्रतीक है। सभी आत्माओं की एक सम्मिलित सत्ता है जिसे 'विश्वमानव' या समाज की सम्मिलित आत्मा कहते हैं। यही परमात्मा है। एक मनुष्य यह चाहता है कि मैं सुखपूर्वक रहूँ, मेरे साथ में सब प्रेम, भलाई एवं सहयोग का बरताव करें। कोई यह नहीं चाहता कि मेरे साथ चोरी, हिंसा, ठगी, कठोरता, अन्याय का बरताव करे। यही इच्छा 'विश्वमानव' की, समष्टि आत्मा या परमात्मा की है। परमात्मा की,

विश्वमानव की इच्छा को ही धर्म कहते हैं। अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है। अधर्म अर्थात् विश्वमानव की इच्छाओं के प्रतिकूल कार्य जब संसार में अधिक बढ़ जाते हैं तो उसे दूर करने के लिए विश्वमानव के अंतस्थल में प्रतिक्रिया होती है और विरोध का उफान उबल पड़ता है। इस उफान को अवतार के नाम से पुकारा जाता है।

अवतार एक अदृश्य प्रेरणा है। सूक्ष्म वातावरण में परमात्मा की इच्छा का आवेश भर जाता है। जैसे आकाश में आँधी छाई हुई हो और उसी समय पानी बरसे तो वर्षा की बूँदें उस आँधी की धूलि से मिश्रित होती हैं। वसंत ऋतु में प्रकृति के सूक्ष्म अंतराल में काम, क्षोभ का आवेश आता है, उन दिनों सभी नर-नारियों में जीव-जंतुओं में कामेच्छा फूट पड़ती है। भय, क्रोध, हिंसा, सांप्रदायिक-राजनैतिक तनाव, घृणा तथा सत्कर्मों की भी एक लहर आती है। वातावरण जैसा बन जाता है, वैसे ही काम बहुत बड़ी संख्या में होने लगते हैं। इसी प्रकार विश्वमानव—परमात्मा की इच्छा पूर्ण करने के लिए सूक्ष्म लोक में अदृश्य वातावरण में आवेश आता है। उस आवेश से प्रेरित होकर कुछ विशिष्ट पुण्यात्मा, जीवटयुक्त महापुरुष संसार में आते हैं और परमात्मा की इच्छा को पूरा करते हैं। एक समय में अनेक अवतार होते हैं, किसी में न्यून किसी में अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति का माप करने का पैमाना 'कला' है। बिजली को नापने के लिए 'यूनिट,' गर्मी को नापने के लिए 'डिग्री सेल्सियस', लंबाई को नापने के लिए 'सेंटीमीटर,' दूरी को नापने के लिए 'किलोमीटर' जैसे होते हैं, वैसे ही किस व्यक्ति में कितना अवतारी अंश है, इसकी नाप 'कला' के पैमाने से होती है। त्रेता में परशुराम जी को तीन कला का और रामचंद्र जी को बारह कला का

अवतार कहा जाता है। यह तो उस समय के विशिष्ट अवतार थे। वैसे अवतार का आवेश तो अनेक में था। वानरों की महती सेना को तथा अनेक अन्य व्यक्तियों को अवतार के समतुल्य कार्य करते हुए देखा जाता है।

इस प्रकार समय-समय पर युग-युग में आवश्यकतानुसार अवतार होते हैं। बड़े कार्यों के लिए बड़े और छोटे कार्यों के लिए छोटे अवतार होते हैं। सृष्टि का संतुलन करने वाली विष्णु शक्ति वैसे तो सदा ही अपनी क्रिया जारी रखती है, पर बड़ा रोग इकट्ठा हो जाने पर बड़ा डॉक्टर भेजती है। उन बड़े डॉक्टरों को उनके महान कार्यों के अनुरूप यश एवं सम्मान प्राप्त होता है। अवतारी महापुरुष की पूजा यथार्थ में विष्णु की पूजा है, जिसके कि वे प्रतीक होते हैं।

लक्ष्मीपति विष्णु सृष्टि की सुंदरता की, संपन्नता की, सद्बुद्धि की और सात्त्विकता की रक्षा करते हैं। लक्ष्मी जी के चार हाथ सुंदरता, संपन्नता, सद्बुद्धि और सात्त्विकता के प्रतीक हैं। समस्त प्राणियों की, समष्टि-सम्मिलित आत्मा लक्ष्मी है। यह लक्ष्मी विष्णु का अर्धांग है। परमात्मा की सत्ता जीवों की आत्मा में समाई हुई है, संसार का नियमन करती है, साथ-साथ लक्ष्मी की, विश्वमानव की इच्छा की रक्षा भी करती है। लक्ष्मी विष्णु से अभिन्न है।

विष्णु के उपासक वैष्णव वे हैं जो विश्व मानव की इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने में अपनी शक्ति लगाते हैं। मीरा का प्रसिद्ध भजन है—"वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे।" समाज का लाभ, संसार की सेवा, विश्व की श्री वृद्धि, विश्वमानव की सुख-शांति के लिए सच्चे अंत:करण से हर घड़ी लगे रहने वाले मनुष्य असली वैष्णव हैं। विष्णु की इच्छा ही उन वैष्णवों की इच्छा और विष्णु की कार्य-प्रणाली ही उनकी कार्य-प्रणाली होती है। वे

पाप को घटाकर धर्म की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। जनता जनार्दन को विष्णु रूप समझकर लोक-सेवा में, विष्णु पूजा में प्रवृत्त रहते हैं।

(४) भगवान

ब्रह्म की चौथी शक्ति भगवान है। भगवान भक्तों के वश में होते हैं। भक्त जैसे चाहते हैं, उन्हें नचाते हैं। भक्त जिस रूप में उनके दर्शन करना चाहते हैं, उसी रूप में प्रकट होते हैं और उनसे जो याचना या कामना करते हैं, उसे पूरा करते हैं। भगवान की कृपा से भक्तों को बड़े-बड़े लाभ होते हैं, परंतु यह भी स्मरण रखने की बात है कि वे केवल भक्तों को ही लाभ पहुँचाते हैं। जिनमें भक्ति नहीं है उनको भगवान से कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। अनेक देवी-देवता भगवान के ही रूप हैं। जिस देवता के रूप में भगवान का भजन किया जाता है, उसी रूप में वैसे ही फल उपस्थित करते हुए भगवान प्रकट होते हैं।

भगवान की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। आत्मा के सशक्त क्रिया रूप को भगवान कहते हैं। आत्मा अनंत शक्तियों का पुंज है। जिस शक्ति को प्रदीप्त, प्रचंड एवं प्रस्फुटित बनाया जाए, वह शक्ति एक बलवान देवता के रूप में प्रकट होती और कार्य करती है। किसी पक्के गुंबजदार मकान में आवाज करने से मकान गूँज उठता है। आवाज की प्रतिध्वनि चारों ओर बोलने लगती है। रबड़ की गेंद को किसी दीवार पर फेंककर मारा जाए तो जितने जोर से उसे फेंका था, टक्कर खाने के बाद वह उतने ही जोर से लौट आती है। इसी प्रकार अंतरंग शक्तियों का विश्वास के आधार पर जब एकीकरण किया जाता है तो उससे आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न होते हैं।

सूर्य की किरणों को आतिशी शीशे के द्वारा एक केंद्र बिंदु पर एकत्रित किया जाए तो इतनी गर्मी उत्पन्न हो जाती है कि उस केंद्र में अग्नि जलने लगती है। मानसिक शक्तियों को किसी इष्टदेव को केंद्र मानकर यदि एकत्रित किया जाए तो सूक्ष्म सजीव चेतना उत्पन्न हो जाती है। यह श्रद्धा निर्मित सजीव चेतना ही भगवान है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में—''भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'' श्लोक में यही भाव प्रकट किया है। उन्होंने भवानी तथा शंकर को श्रद्धा-विश्वास रूपी बताया है। श्रद्धा साक्षात् भवानी है और विश्वास साक्षात् शंकर है। विश्वास मनुष्य को मृत्यु के मुख से बचा सकता है और जीवित मनुष्य को क्षण भर में रोगी बनाकर मृत्यु के मुख में ढकेल सकता है। 'शंका डायना मनसा भूत' कहावत किसी बड़े अनुभवी ने प्रचलित की है। चित्त में उत्पन्न हुई शंका डाइन बन जाती है और मन का भय भूत का रूप धारण करके सामने आ खड़ा होता है। रस्सी को साँप, झाड़ी को भूत, कड़ुए पानी को जहर बना देने की और मृत्यु का खतरा उत्पन्न करने की शक्ति विश्वास में मौजूद है। केवल घातक ही नहीं, निर्माणात्मक शक्ति भी उसमें है। कहते हैं—'मानो तो देव नहीं तो पत्थर तो है ही'-पत्थर को देव बना देने वाला विश्वास है। विश्वास की शक्ति अपार है। शास्त्र कहता है—'विश्वासो फलदायकः।'

हम अपनी 'ईश्वर कौन है? कहाँ है? कैसा है?' में, 'गायत्री की चमत्कारी साधना' में तथा 'ब्रह्म विद्या के रहस्योद्घाटन' नामक पुस्तकों में सविस्तार यह बता चुके हैं कि मंत्र शक्ति तथा देव शक्ति और कुछ नहीं-आत्मशक्ति या इच्छाशक्ति का दूसरा नाम है। ध्यान, जप, अनुष्ठान आदि की योगमयी साधनाएँ एक प्रकार के मानसिक व्यायाम हैं। जैसे शारीरिक व्यायाम करने से देह पुष्ट होती है और

निरोगता, सुंदरता, दीर्घायु, भोग, सुख, सहनशक्ति, धन उपार्जन तथा कठिन कष्ट साध्य कामों को पूरा करने की प्रत्यक्ष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वैसे ही मानसिक साधनाओं द्वारा, आराधना-उपासना द्वारा मनोबल बढ़ता है और उससे नाना प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। मंत्रशक्ति, देवशक्ति से जो कार्य पूरे होते हैं वे किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं होते वरन् अपने ही पुरुषार्थ द्वारा, अपनी ही आत्मशक्तियों द्वारा उपलब्ध होते हैं। साधना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्मशक्तियाँ बलवान होती हैं और मनचाहे परिणाम उपस्थित करती हैं।

भक्त भगवान का पिता है। अपनी भक्ति द्वारा, साधना द्वारा वह अपने भगवान को उत्पन्न करता और पुष्ट करता है। जो अपने भगवान को जितना भक्ति का, साधना का दूध पिलाता है, उसका भगवान उतना ही बलवान हो जाता है और जितना उसमें बल होता है, उतना ही महत्त्वपूर्ण परिणाम उपस्थित कर देता है। प्रहलाद का भगवान इतना बलवान था कि खंभ चीरकर नृसिंह रूप में निकल पड़ा और हिरण्यकश्यपु का पेट चीर डाला। नरसी भगत का भगवान हुंडी बरसा सकता था, परंतु हमारे भगवानों में वह बल नहीं है। किसी के भगवान स्वप्न में या जागृत अवस्था में दर्शन दे सकते हैं। किसी के भगवान भविष्य का संकेत कर सकते हैं। किसी के भगवान विपत्ति में सहायक हो सकते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसने अपने भगवान को जिस योग्य बनाया होगा, वैसे वरदान देने के लिए वैसी सहायता करने के लिए वह तैयार रहेगा।

वस्तुतः मनोबल ही भगवान है। मनोबल को बढ़ाने के तरीके अनेक हैं। योग साधना का भारतीय तरीका ही एकमात्र उपाय नहीं है, संसार में अनेक साधन और उपाय इसके हैं। विश्वास

के आधार पर मनोबल बढ़ता है। कई व्यक्ति बिना योग साधना के भी अपने स्वावलंबन, आत्मविश्वास, अध्यवसाय, साहस, सत्संग एवं पराक्रम द्वारा अपना मनोबल बढ़ा लेते हैं और वही लाभ प्राप्त करते हैं जो भक्तों को भगवान प्रदान करते हैं। अनेक अनीश्वरवादी व्यक्ति भी बड़े-बड़े अद्‌भुत आविष्कार कर रहे हैं। विद्वान विद्या के और धनी धन के चमत्कार दिखा रहे हैं। इस सबके मूल में उनकी मानसिक विलक्षण शक्तियाँ काम कर रही हैं। यह भगवान की ही कृपा है। भगवान को सुर और असुर सभी बिना भेदभाव के प्रसन्न कर सकते हैं, उनका अनुग्रह और वरदान प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रह्म की मूल सत्ता निर्लिप्त है। वह नियम रूप है, व्यक्तिगत रूप से किसी पर प्रसन्न-अप्रसन्न नहीं होती। उस पर आराधना, पूजा या निंदा का कोई प्रभाव नहीं होता। अग्नि देवता को गाली देने वाले या पूजा करने वाले में भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं। जो भी उसके नियमों के अनुरूप चलेगा लाभ उठावेगा और जो अग्नि को अनियमित रूप से छुएगा निश्चयपूर्वक जल जाएगा। आत्मा का, ईश्वर का, विष्णु का यही नियम है, पर भगवान की लीला विचित्र है, वे भक्त वत्सल हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है, कुएँ की आवाज की तरह वे उसे वैसे ही भजने लगते हैं। कीर्तन, कथा, जप, तप, पूजा, पाठ, ध्यान, भजन यह भगवान की प्रसन्नता के लिए ही है, श्रद्धा और विश्वास भगवत् प्राप्ति का मूल साधन है। यदि श्रद्धा या विश्वास न हो तो सारे अनुष्ठान निष्फल हैं।

भगवान से, आत्मबल से, आस्तिक-नास्तिक सभी अपने-अपने ढंग से लाभ उठाते हैं। संसार के महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ने का, उनके अद्‌भुत-आश्चर्यजनक कार्यों का जो विवरण मिलता

है, उससे हम आश्चर्यान्वित रह जाते हैं और सोचते हैं कि किसी देवता की कृपा से ही वे इतने बड़े कार्यों को पूरा कर सके होंगे। वह देवता भगवान है, जिसे मनोबल भी कहते हैं। प्रयत्न से, साधना से, विश्वास से, श्रद्धा-भक्ति से, मनोबल बढ़ता है और फिर उसी की सहायता से बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे हो जाते हैं। मेस्मेरिज्म विद्या जानने वाले अपने अकिंचन मनोबल से बड़े-बड़े खेल दिखाते हैं। यह बल अधिक हो जाता है तो जिस दिशा में भी चाहे मनुष्य मोरचे फतह करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। अनायास, अप्रत्याशित सुअवसर भी उसे प्राप्त होते हैं। धन को देखकर धन, वैभव को देखकर वैभव और सौभाग्य को देखकर सौभाग्य अपने आप अनायास ही टपक पड़ते हैं। अनायास लाभों में भी 'सबल की सहायता' का ईश्वरीय नियम काम किया करता है।

भगवान कल्पवृक्ष हैं। उन्हें जो जिस भाव से भजता है, उसकी इच्छा पूर्ण करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जो मनस् तत्त्व के जिस पहलू को बलवान बना लेता है, उसे उस दिशा में पर्याप्त सफलताएँ मिलती हैं।

इस प्रकार चतुर्मुखी ब्रह्म (ब्रह्मा) की क्रियापद्धति इस सृष्टि में दृष्टिगोचर हो रही है, उपनिषदों में इसे चार वर्णमाला वाला ब्रह्म भी कहा है। सत् प्रधान आत्मा को ब्राह्मण, शासनकर्ता स्वामी-ईश्वर को क्षत्रिय, लक्ष्मीपति विष्णु को वैश्य एवं भक्त के वश में पड़े हुए भक्त की इच्छानुसार कार्य करने वाले भगवान को शूद्र कहा है। यह चार भेद उसकी शक्तियों का रूप समझाने के लिए आचार्यों ने उपस्थित किए हैं। वस्तुतः ब्रह्म एक ही है, उसकी चार शक्तियों के आधार पर चार वेद बने हैं, परंतु वस्तुतः उसकी अनंत शक्तियाँ हैं और वह मनुष्य की बुद्धि की पहुँच से बहुत आगे हैं।

परलोक कहाँ है? भूःलोक

स्वर्ग और नरक को खोजने के लिए दूर जाने की जरुरत नहीं, वह यहीं इसी धरती पर ही मौजूद है। इसी लोक में अनेक व्यक्ति सुरपुर के आनंद लूट रहे हैं, उन्हें सब प्रकार के ऐश-आराम हैं। स्वर्गलोक के जो वर्णन कथा-पुराणों में सुने जाते हैं, वे सब उनके लिए इसी लोक में मौजूद हैं। दूसरी ओर अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं जिनके समक्ष यमपुरी की समस्त यातनाएँ हर घड़ी सामने उपस्थित रहती हैं। अस्पतालों, जेलखानों, पागलखानों, अपाहिज ग्रहों, कोढ़ी खानों में जाकर हम देख सकते हैं कि मनुष्य कितनी पीड़ाएँ सहते हैं। अनेक मनुष्यों के लिए अपनी जिंदगी का जीना तक कठिन हो जाता है, वे तत्कालीन वेदना से छुटकारा पाने के लिए विष खाकर, जलाशय में डूबकर, फाँसी लगाकर, तेल छिड़ककर, रेल के नीचे लेटकर तथा अन्य किसी प्रकार से आत्महत्या कर लेते हैं। मृत्यु में बड़ा कष्ट होता है, पर आत्महत्या करने वाला मनुष्य अपने जीवन को मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक अनुभव करता है, तभी तो वह इस प्रकार के भयंकर कामों के लिए तैयार हो जाता है। ये घटनाएँ बताती हैं कि नरक इस लोक में भी मौजूद है।

नंदन वन से बगीचे, यक्ष-गंधर्वों से गायक, अप्सराओं सी तरुणियाँ, वृहस्पति से देव गुरु, कुबेर से भंडारी, पुष्पक विमान से वाहन इस लोक में मौजूद हैं। इंद्र वज्र की समता करने वाला परमाणु बम यहाँ मौजूद है। वरुण, यम, अग्नि, पवन, पूषा, विश्वेदेवा इस लोक के चौकीदार की तरह हाथ बाँधे हर वक्त सेवा के लिए खड़े रहते हैं। विज्ञान ने समस्त देवताओं की शक्तियों को छीनकर मनुष्य की सेवा में उपस्थित कर दिया है। लक्ष्मी, सरस्वती और चंडी के दर्शन करने हों तो किसी अन्य लोक में जाने की आवश्यकता नहीं।

उन्हें भी इस लोक में उपलब्ध किया जा सकता है। सुरपुरी की समस्त विशेषताएँ इस लोक में मौजूद हैं।

नरक को खोजने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। रौरव, कुंभीपाक, ताम्रपत्र, असिपत्र आदि चौबीस नरकों के स्थान पर यहाँ चौबीस सौ नरक देखे जा सकते हैं। किसी घृणित, भयंकर कष्टसाध्य और दुसह वेदनायुक्त बीमारी में जिन्हें स्वयं फँसने का कभी अनुभव हुआ है या ऐसे रोगी की जिनने परिचर्या की है, वे जानते हैं कि किसी नरक में इससे अधिक दु:ख न होगा। एक सौ पाँच-छह डिग्री के बुखार से जिसका रोम-रोम जल रहा है, हड़फूटन और प्यास की बेचैनी से बेहोशी तक आ जाती है, उन्हें उष्ण ताप नरक से क्या कम कष्ट है? कफ जब गले को रुँध देता है और जब न तो अच्छी तरह साँस ली जाती है, न जिह्वा से शब्द निकलता है, तब यमदूत द्वारा गला घोंटने के कष्ट में और क्या अंतर रह जाता है? गर्भ में बंद बालक किसी कुंभीपाक नरक से अच्छी दशा में नहीं है? आँख, दाढ़ के दर्द जब उग्र रूप से उठते हैं तो मनुष्य छटपटा जाता है। प्रसव के समय माताएँ कितनी पीड़ा सहती हैं। बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काट लेने पर, अग्नि से जल जाने पर, भारी आघात लगने पर या भयंकर फोड़ा उठने पर जो पीड़ा होती है, वह नरक की किस पीड़ा से कम होगी?

नरक में नियत संख्या में यमदूत होते हैं, उन यमदूतों की खास तरह की शक्ल और खास तरह की पोशाक होती है, जिससे आसानी से उन्हें पहचाना जा सकता है, पर यहाँ तो अगणित यमदूत हमारे चारों ओर फिरते हैं। उनकी शक्ल और पोशाक भले आदमियों की सी होने के कारण और भी अधिक गहरी चोट लगती है। नरक के यमदूतों को तो जीव पहचान लेता है और उनकी चोटों के लिए

तैयार हो जाता है, पर इस लोक के यमदूत उनसे भी भयंकर हैं। वे पहचाने नहीं जाते और अकस्मात् ऐसे घातक आक्रमण करते हैं कि मनुष्य तिलमिला जाता है, उनके चोट करने के निर्लज्ज तरीके को देखकर यमदूत भी सकुचा जाते हैं। मित्र बनकर विश्वासघात करने वाले, रस दिखाकर विष पिलाने वाले, छाती से लगाने का प्यार दिखाकर कलेजा खा जाने वाले यमदूत यहाँ गली-गली में मिल सकते हैं। ठग, चोर, हत्यारे, व्यभिचारी, लंपट, विश्वासघाती, लबार, झूठे, चुगलखोर, बेईमान, कपटी, धूर्त, अत्याचारी, अन्यायी, परपीड़क, निर्लज्ज, कुकर्मी, नास्तिक, लुटेरे, निर्दय, क्रूर, निष्ठुर स्वभाव के साक्षात् शैतान जगह-जगह मौजूद हैं। बेचारे यमदूत अपने सीधे-साधे दंड अस्त्रों से जीव को एक सीधे-साधे नियत तरीके से मारते-पीटते होंगे, पर इस लोक के सफेदपोश यमदूत दूसरे को शारीरिक, मानसिक यातनाएँ पहुँचाने के लिए जो-जो प्रपंच रचते हैं, उन्हें देखकर नरक के यमदूत हैरत में रह जाएँगे। उन बेचारों से सात पुश्त में भी ऐसे मायावी आक्रमण करना शायद न आए।

दृष्टि पसारकर हम यदि दूर-दूर तक देखें और सुखी, संपन्न, समृद्ध लोगों के जीवन के आनंद तथा दुखी, दरिद्र, पीड़ित लोगों के कष्टों पर कुछ देर विस्तृत विचार करें, दोनों प्रकार के लोगों के जीवन चित्र अपने कल्पना क्षेत्र में खीचें तो इसी लोक में स्वर्ग और नरक का अस्तित्व हमें मिल जाएगा। सुख भी इतना है कि उससे बढ़कर स्वर्ग में भला और क्या अधिक सुख होगा? दुःख भी इतना है कि उन दुःखों के आगे नरक लोक में और अधिक भला क्या दुःख होगा? मृत्यु तुल्य ही नहीं आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाले मृत्यु से भी अधिक दुख इस लोक में मौजूद हैं, वह कष्टों की अंतिम सीमा है। इन सब बातों पर विचार करते हुए विज्ञ पुरुषों ने

ठीक ही कहा है कि—"स्वर्ग और नरक इसी लोक में हैं।" सचमुच पूर्ण तृप्तिदायक और अत्यंत उद्विग्न करने वाली स्थिति इस लोक में मौजूद है। स्वर्ग और नरक का पूरा-पूरा अस्तित्व इस लोक में उपलब्ध है।

परलोक को भोगलोक कहा जाता है। परलोक में भले या बुरे भोग भोगने पड़ते हैं। इस लोक में जहाँ कर्म करने की सुविधा है, वहाँ कर्मफल के भोग में विवशता भी है। कोई व्यक्ति सुकर्म करके उसके सुफल से बचना चाहे तो यह उसके हाथ की बात नहीं, इसी प्रकार बुरे कर्म करके दंड से बचना भी संभव नहीं। रोगी, घायल, अपाहिज तथा अन्य दुःखों में पड़े हुए व्यक्ति यह कब चाहते हैं कि उन्हें दुःख सहना पड़े, तो भी चूँकि इस लोक में परलोक भी मौजूद है, उस परलोक के नियमानुसार उन्हें नरक भोगने के लिए विवश होना पड़ता है। उसी प्रकार चाहने को तो सुख-समृद्धि सभी चाहते हैं, पर चाहना कितनों की पूरी होती है। कितने ही जीव किसी ऐसे परिवार में उत्पन्न होते हैं, जहाँ अनायास ही अपार सुख-साधन मौजूद रहते हैं। कर्मभोग उन्हें इस स्थिति में दौड़ाता है। चूँकि परलोक इस लोक में मौजूद है, इसलिए स्वर्ग सुख की स्थिति भी अधिकारी लोगों के सामने परलोक के नियमानुसार अपने आप सामने आ जाती है। इस लोक में परलोक का कार्यक्रम यथावत् चल रहा है, उस कार्यक्रम के अनुसार सभी प्राणी स्वर्ग और नरक के सुख-दुख का रसास्वादन करते हैं।

भूलोक के परलोक में सुख को स्वर्ग और दुःख को नरक कहते हैं। जिन्हें इस लोक में सुख प्राप्त है, वे स्वर्ग भोग रहे हैं और जिन्हें दुःख प्राप्त हो रहा है, वे बेचारे नरक भोग रहे हैं। यह एक मोटी परिभाषा है। इतना कह देने से ही काम न चलेगा। अब हमें

नरक की बारीकी में जाना होगा। कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें रुपया-पैसा, धन-दौलत, सोना-चाँदी की किसी प्रकार की कमी नहीं। नौकर-चाकर, महल, मोटर सब कुछ है। ऐश आराम के तरह-तरह के साधन मौजूद हैं। इतना सब होते हुए भी उन्हें चैन नहीं, दिन-रात अशांति की ज्वाला में जलते रहते हैं, रात को नींद नहीं आती, सारी सुख-सामग्री फीकी मालूम होती है। हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि अमुक राजकुमार या धनी व्यक्ति ने अपने ऐश आराम के जीवन को लात मार दी और अमुक त्यागपूर्ण रास्ता ग्रहण कर लिया, इससे प्रतीत होता है कि उन्हें उस सुख-सामग्री में वास्तविक सुख नहीं मिला।

हमारा व्यक्तिगत रूप से अनेक धनी-मानी और समृद्ध व्यक्तियों से संपर्क रहता है। वे अपने हृदय की व्यथा खोलकर हमारे सामने अपने मन का भार हल्का करते हैं। लंबे समय के अपने व्यक्ति गत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि सुख-सामग्री होते हुए भी बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो सुखी कहे जा सकते हैं। अधिकांश में तो वे गरीब और अभावग्रस्त लोगों से भी अधिक दुखी पाए जाते हैं।

अब दूसरी ओर देखिए। इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जिनके पास धन-संपत्ति नहीं है। साथ ही कष्ट भी उठाते हैं, फिर भी वे स्वर्गवासी कहे जाते हैं। साधु, संत, महात्माओं के पास धन-संपत्ति नहीं होती, उनके पास जीवन निर्वाह को अन्न-वस्त्र जैसी साधारण वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा में नहीं होतीं, धन के अभाव में प्राय: कुछ-न-कुछ वस्तुओं का अभाव उनके सामने खड़ा ही रहता है। कितने ही परोपकारी मनुष्य संसार के हित के लिए कष्ट सहते हैं। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दीं, हरिश्चंद्र ने अपने को तथा स्त्री-पुत्रों को बेचा,

मोरध्वज ने अपने पुत्र को दे डाला, शिवि ने नाना विधि कष्ट उठाए, मीरा और दयानंद ने विष के प्याले पिए, प्रह्लाद ने पिता के अत्याचार सहे, भारत के स्वाधीनता संग्राम में लाखों व्यक्तियों ने जेल, लाठी-गोली तथा फाँसी सही, यह कष्ट सहना या दु:ख-नरक भोगना नहीं कहा जा सकता। ऐसे कष्टों में भी स्वर्ग का सुख छिपा होता है। स्वेच्छा से स्वीकार किया हुआ कष्ट तप कहलाता है। वह बाहर से कष्ट जैसा दिखाई पड़ता है, पर वास्तव में वह दुख नहीं है।

सुख और दु:ख का निर्णय वस्तुओं के होने-न-होने के आधार पर नहीं किया जा सकता है। मौज से पड़े रहना या कष्ट में दिन व्यतीत करना भी स्वर्ग-नरक की पहचान नहीं है, क्योंकि न तो धनी लोग सुखी ही देखे जाते हैं और न अभावग्रस्तों या कठिनाईयों में दिन व्यतीत करने वालों को दु:खी ही कहा जा सकता है। शास्त्रकारों ने भूलोक के सुखों में मानसिक, शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्य को स्वर्ग बताया है और इन स्वास्थ्यों का अभाव ही नरक है। जो शरीर से स्वस्थ है, उसे बीमारियों के आक्रमण का आए दिन शिकार न होना पड़ेगा। रोगों का उन पर हमला होता है, जिनका शरीर दुर्बल होता है। बलवान शरीर वाला मनुष्य दैहिक पीड़ाओं से प्राय: बचा रहता है। इंद्रियों के बलवान रहने से भोग शक्ति सुस्थिर रहती है और उसे साधारण भोग सामग्री में भी वह आनंद आता है जो अमीरों को बहुमूल्य ऊँचे दर्जे की वस्तुओं में उपलब्ध नहीं होता। जिसकी पाचन शक्ति ठीक है, जिसे कड़ाके की भूख लगती है, उसे जौ की रोटी, चने के साग से खाते हुए वह आनंद आता है जो कब्ज और जुकाम से पीड़ित रहने वाले व्यक्ति को छप्पन व्यंजनों से भरे थाल में नसीब नहीं हो सकता। काम शक्ति स्वस्थ रहने से मजदूर और उसकी स्त्री मजदूरिनी इंद्र और अप्सरा का आनंद अनुभव करते

हुए रात बिताते हैं, पर जिन्हें प्रदर, प्रमेह, शीघ्र पतन, नपुंसकता आदि घेरे हुए हैं, वे पति-पत्नी कितने ही स्वरूपवान हों, कितनी ही विलासिता संपन्न वस्तुओं के धनी हों, दांपत्य जीवन का सुख नहीं उठा पाते। रात्रि आती है, पर उन्हें चिढ़ाने, तिरस्कृत करने और कुढ़ाने आती है। जीविका का प्रश्न भी स्वास्थ्य से संबंधित है। जो मजबूत है, निरोग है, वह धरती में लात मारकर अपने निर्वाह के लिए चाहे जहाँ जीविका उपार्जित कर लेगा। उसे निर्वाह के लिए जीविका कमाने की कभी चिंता नहीं करनी पड़ती।

शारीरिक स्वास्थ्य स्वयं एक सुख है, जिसमें हर वक्त ताजगी, प्रसन्नता, निश्चिंतता तथा खुशी छाई रहती है। आत्मविश्वास, साहस, पुरुषार्थ और उत्साह की तरंगें उठती रहती हैं। नीरोग मनुष्य अपने आप में एक पूर्णता अनुभव करता है। इंद्रियाँ सशक्त और क्रियाशील रहने पर दीर्घकाल तक अपना काम ठीक प्रकार करती रहती हैं। बुड्ढे हो जाने पर भी नेत्रों की ज्योति ठीक रहती है, दाँत मजबूत बने रहते हैं। कानों से ठीक सुनाई देता है। भोजन करते समय वे नित्य एक तृप्तिदायक सुख का आनंद लूटते हैं। उसके दांपत्य जीवन में बड़ा संतोषजनक सुख रहता है, जीविका उपार्जन करने में भी कभी पीछे नहीं रहते। धनी होना दूसरी बात है, पर इतना वे अवश्य कमा लेते हैं कि जीवन-क्रम पूर्ण सुविधा के साथ चलता रहे। यह सब सुख ऐसे ही हैं, जिनके लिए बड़े-बड़े अमीर तरसते हैं।

पैसे की अधिकता से सुख-साधन तो अवश्य मिल जाते हैं, पर साथ-ही-साथ उस पैसे की छीन-झपट करने के इच्छुक भी इतने पैदा हो जाते हैं कि उनसे बचाव करने, उनके आक्रमण को रोकने के लिए असाधारण रूप से चिंतित रहना पड़ता है। दूसरे उस पैसे को और अधिक बढ़ाने की तृष्णा चैन से नहीं बैठने देती। तीसरे धन

की अधिकता के कारण अनेकानेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं, उन दुर्गुणों के दुखद परिणाम नित नए क्लेश उत्पन्न करते रहते हैं। इन तीनों प्रकार की बेचैनियों में मनुष्य का स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है। यही कारण है कि धनी लोग सुखी बहुत कम देखे जाते हैं। इस संसार में, भूलोक में सुख उन्हें है, जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं। एक निरोग व्यक्ति चाहे वह निर्धन ही क्यों न हो, इतना सुखी रहता है जितना सुखी धनवान व्यक्ति अपने सारे धन के बदले में भी नहीं हो सकता।

शारीरिक सुख के बाद मानसिक सुख है। सुशिक्षा, विद्या, विचारशीलता, समझदारी, सुविस्तृत जानकारी, अध्ययन, चिंतन, मनन, सत्संग, अनुभव आदि के द्वारा मन और मस्तिष्क को सुसंस्कृत बना लेना, मानसिक स्वस्थता है। शिक्षा के द्वारा डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, अफसर, वैज्ञानिक, लेखक, संपादक, बाजीगर, शिल्पी, व्यापारी, कलाकार, मूर्तिकार, चित्रकार, संगीतज्ञ, नट आदि अपनी-अपनी महत्ता प्रकट करते हैं। अपनी योग्यताओं के बल पर संसार को महत्त्वपूर्ण लाभ पहुँचाते हैं और अपने आप में सफलता का संतोषदायक आनंद अनुभव करते हैं, संपत्ति कमाते हैं, यशस्वी बनते हैं तथा मरने के बाद नई पीढ़ी के लिए एक आदर्श छोड़ जाते हैं।

सुशिक्षा ने ही इस संसार में महात्मा, भक्त, ज्ञानी, त्यागी, गुणी, विद्वान, महापुरुष, पथ-प्रदर्शक, नेता, देवदूत, पैगंबर तथा अवतार पैदा किए हैं। यदि दुनिया में सुशिक्षा न रहे तो मनुष्य एक बहुत ही दुर्बल और असहाय पशु मात्र रह जाएगा। ज्ञान ने ही मनुष्य को तुच्छ पशु से ऊँचा उठाकर सृष्टि का सम्राट बना दिया है। जीवन का सुख इस विद्या-बल पर भी बहुत हद तक निर्भर है। अशिक्षित, मूर्ख, बेवकूफ, भोंदू या अज्ञानी पुरुष एक प्रकार का पशु है, उसे पशुवत्

भारभूत जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अपनी शक्तियों को न तो वह जानता है, न उन्हें विकसित कर पाता है और न उनसे लाभ उठा पाता है, किंतु जो लोग बुद्धिमान हैं, वे अपने बुद्धिबल से इस जीवन में ही स्वर्ग सुख का आनंद लूटते हैं।

विवेकवान व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक क्लेश और कष्टों से बचे रहते हैं। संसार में प्रकृति के क्रम से वस्तुओं का परिवर्तन होता है। स्वजनों की मृत्यु, बिछोह, घाटा, चोरी, भूल, टूट-फूट आदि के कारण अनेकों प्रकार की अनिच्छित घटनाएँ सामने आती हैं। अविवेकी पुरुष अनिच्छित घटनाएँ घटित होते देखकर मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और शोक, क्लेश, चिंता, बेचैनी, पीड़ा एवं अशांति इस गतिशील संसार की इन नित्य घटित होने वाली घटनाओं से विचलित नहीं होते और शोक सागर में डूबने से बच जाते हैं, जिसमें कि अज्ञानी पुरुष डूबकर अपने जीवन को बुरी तरह घुला डालते हैं। स्वास्थ्य की भाँति शिक्षा भी अपने आप में स्वयं सुख है। सुस्थिर विचारों और महत्त्वपूर्ण विचारों से उसका मन सदा प्रसन्न, प्रफुल्ल तथा संतुष्ट रहता है।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बाद नैतिक स्वास्थ्य का स्थान है। स्वास्थ्य के इन तीन भागों को मिलाकर पूर्ण स्वस्थता बनती है। ईमानदारी, धर्म परायणता, सदाचार, संयम से अपने आपको पवित्र बनाना तथा दूसरों के साथ प्रेम, परोपकार, सेवा, उदारता एवं मधुरता का व्यवहार करना, यह नैतिक स्वास्थ्य की परिभाषा है। अपनी असुविधा से दूसरों की असुविधा का अधिक ध्यान रखना और अपने सुख से दूसरे के सुख को पहला स्थान देना, यह नैतिक स्वास्थ्य की कसौटी है। इस कसौटी पर जिनकी विचारधारा और कार्य प्रणाली खरी उतरती है, वे नैतिक दृष्टि से स्वस्थ हैं।

नैतिक स्वास्थ्य ठीक होने से समाज का बड़ा मधुर सहयोग प्राप्त होने लगता है। घर में, घर से बाहर, समाज में, देश में, विदेश में ऐसे स्वस्थ मनुष्य को सभी अपनाते हैं, सहयोग करते हैं, सहायता देते हैं, प्रेम करते हैं, प्रशंसा करते हैं तथा छाती से लगाए रहते हैं। नैतिक स्वास्थ्य एक खिला हुआ सुगंधित पुष्प है, जिसे देखने को, सूँघने को, छूने को, सभी लोग ललचाते हैं। जो ईमानदार है, सच्चा है, विश्वासी है, निष्कपट है, मधुर भाषी है, वफादार है, प्रेम करता है, उदार है, सेवाभावी है, ऐसे व्यक्ति को पाकर हर कोई अपने को धन्य मानता है। पिता पुत्र को, पत्नी पति को, भाई-भाई को, मित्र मित्र को, मालिक नौकर को इन गुणों से युक्त पाकर फूला नहीं समाता। नैतिक स्वास्थ्य के आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। सच्चा मनुष्य देवताओं की तरह महान और वंदनीय है। नैतिकता में हजार हाथियों के बराबर बल बताया जाता है। वस्तुत: ईमानदार, मधुर और उपकारी स्वभाव के मनुष्य में अकूत बल होता है। उसे अपार आनंद का अपने अंत:करण में निरंतर अनुभव होता रहता है।

जिसे सच्चे हृदय से प्यार करने वाले, सच्ची सहानुभूति रखने वाले, आदर करने वाले अनेक मनुष्य प्राप्त हैं। उसके लिए यह लोक ही स्वर्ग है। आत्मीयता, प्रेम, विश्वास और आदर भाव रखने वाले लोगों के बीच में रहकर मनुष्य को जो सुख मिलता है, उसका रसास्वादन करने वाले भुक्तभोगी ही जानते हैं। गरीबी होते हुए भी प्रेम और विश्वास के वातावरण में रहते हुए जो आनंद मिलता है, उस पर अविश्वासी वातावरण की अमीरी को निछावर किया जा सकता है। नैतिकता का विकास मनुष्य के अस्तित्व का, व्यक्तित्व का विकास है। इसे आध्यात्मिक उन्नति भी कहते हैं। जिसकी नैतिकता जितनी ही विकसित है, उसे अपने अंत:करण में सदा

आनंद का अनुभव होगा और चूँकि संसार दर्पण के समान है, इसमें वैसी ही शक्लें दीखती हैं, जैसे कि हम स्वयं होते हैं। अपने आपको भला बना लेने पर दुनिया के भले तत्त्व अपने सामने आ जाते हैं और उसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस दुनिया में सच्चे, सज्जन, प्रेमी, भले उत्तम स्वभाव के मनुष्य ही भरे पड़े हैं। हर जगह उसे अनुकूलता, मधुरता और शांति का वातावरण दृष्टिगोचर होता है।

शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक स्वास्थ्य में वह शक्ति है कि भूलोक को स्वर्गीय आनंद से परिपूर्ण बना देती है। जिन साधनों की जीवन को आनंदित बनाने के लिए आवश्यकता है, वे सभी उसे उपलब्ध हो जाते हैं। हो सकता है कि उसके पास लाख-करोड़ की संपत्ति न हो, पर जो कुछ स्वस्थ मनुष्य के पास होता है, वह इतना अधिक एवं इतना वास्तविक होता है कि उसकी तुलना में चाँदी का मैदान और सोने का पहाड़ भी तुच्छ है। जिन्हें यह त्रिविध स्वास्थ्य प्राप्त है, उनके लिए यह परमात्मा का परम पुनीत उपवन-संसार सब प्रकार आनंदमय है। सब ओर उसे प्रसन्नता और सुख-शांति का झरना दृष्टिगोचर होता है। प्रभु की पुण्यकृति यह वसुधा, वसुंधरा, माता की गोद के समान सुखद दृष्टिगोचर होती है। शास्त्र कहता है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी।" स्वस्थ मनुष्य इस शास्त्र वचन की सत्यता को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उसे लगता है कि जन्मभूमि धरती माता का महत्त्व भूलोक स्वर्ग से कम तो किसी प्रकार नहीं, वरन् उससे अधिक ही है।

शरीर को स्वस्थ रखना, बुद्धि को विकसित करना और नीतिवान बनना तीनों ही बातें मनुष्य के हाथ में हैं। कुमार्ग पर जाने से, नीच, तामसिक, दुर्गुणों को अपनाने से शरीर नष्ट होता है, बुद्धि नष्ट होती है और सामाजिक प्रेमभाव तथा विश्वास नष्ट होता है।

यह सर्वनाश ही नरक है। बुरे कामों के लिए जिसकी निंदा होती है, जो अयोग्यता अथवा दीनता के कारण तिरस्कृत होता है, उसे नरकगामी कहना चाहिए। सद्गुणों के द्वारा जो दूसरों का मन अपनी मुट्ठी में रखता है, जिसे समीप देखकर दूसरों के हृदय की कली खिल जाती है, जिसके विचार तथा कार्य सम्माननीय हैं, वह स्वर्गगामी कहा जाएगा।

जिन्हें भूलोक के परलोक में, इसी जीवन में स्वर्ग का रसास्वादन करना हो, उन्हें चाहिए कि अपने शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाएँ। इस उन्नति के साथ-साथ मनुष्य क्रमशः स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ता जाता है और नरक की यातनाओं से दूर हटता जाता है।

भुवः लोक

प्रकृति का विस्तार बहुत बड़ा है। जो कुछ हम आँखों से देखते, कानों से सुनते, त्वचा से स्पर्श करते या अन्य किसी प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, वह बहुत थोड़ा है। इससे अनेक गुनी वस्तुएँ ऐसी हैं जो इंद्रियों से अनुभव में नहीं आतीं, परंतु वे इस संसार में मौजूद हैं। स्थूल या दृश्य की अपेक्षा सूक्ष्म या अदृश्य अधिक हैं। दृश्य जगत को लोक और अदृश्य जगत को परलोक कहते हैं।

हर पदार्थ की, प्रत्येक तत्त्व की मूल सत्ता सूक्ष्म है; पर वह कभी-कभी दूसरे पदार्थों के साथ मिलकर स्थूल हो जाती है। चूँकि संसार के रासायनिक पदार्थ सदैव गतिशील रहते हैं, इसलिए जब उस रासायनिक सम्मिश्रण में कुछ कमी आ जाती है तो वह स्वरूप बदल जाता या नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में वह पदार्थों की मूल सत्ता पुनः सूक्ष्म रूप धारण कर लेती है, अदृश्य बन जाती है।

किसी वस्तु की मूल सत्ता कभी भी नष्ट नहीं होती वरन् किसी-न-किसी दृश्य या अदृश्य रूप में बनी ही रहती है। प्रकृति के समस्त परमाणु अनादि और अनंत हैं।

जब कोई वस्तु जलाई जाती है तो उसका सारा दृश्य रूप अदृश्य हो जाता है। केवल मुट्ठी भर भस्म बची रहती है। वह इतना बड़ा ढेर कहाँ चला गया? मोटी दृष्टि से मालूम पड़ता है कि वह नष्ट हो गया, पर विज्ञान बताता है कि कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, केवल उसका रूप परिवर्तन होता है। उस ईंधन के परमाणु सूक्ष्म या अदृश्य बन गए। अब वे आँखों से दिखाई नहीं पड़ते तो भी इस संसार में अदृश्य रूप से बादलों की भाँति यहाँ-वहाँ फिरते हैं। मिर्च जलाई जाएँ तो दूर-दूर बैठे हुए लोगों को खाँसी या छींक आती हैं। हवन की सुगंध दूर-दूर तक फैलती है। इससे प्रतीत होता है कि जलने के बाद भी उन वस्तुओं का अस्तित्व मौजूद है। मिर्च या हवन सामग्री के परमाणु हवा के साथ इधर-उधर उड़ते हैं और लोगों को गंध द्वारा अपना परिचय देते हैं।

तालाब का पानी गर्मी के दिनों में बड़ी तेजी से सूख जाता है। यह कहाँ गया? क्या नष्ट हो गया? नहीं, सूरज की गर्मी के कारण यह भाप बनकर आकाश में उड़ गया। यह पानी तालाब में से उड़ते समय दिखाई नहीं देता, परंतु जब बहुत से तालाबों, नदियों और समुद्र का उड़ा हुआ पानी एक जगह जमा हो जाता है तो बादलों के रूप में दिखाई पड़ता है। बादल उस भाप का स्थूल रूप है, पर जब वह भाप बहुत ही हल्की और थोड़ी होती है तो दिखाई नहीं पड़ती। प्राय: हवा में सदा ही थोड़ा-बहुत पानी उड़ता रहता है, पर वह दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि उस समय वह सूक्ष्म रूप में होता है। सूक्ष्म वस्तुओं को आँखें देखने में असमर्थ होती हैं।

एक खेत में लगातार बीस वर्ष तक ईख की खेती की जाए तो उसमें इतना गुड़ पैदा होगा कि उस खेत में कई फुट का परत बिछ सकता है। इतना गुड़ कहाँ से आया? ईख की जड़ें जितनी गहरी जमीन में जाती हैं उतनी मिट्टी खोदकर वैज्ञानिक जाँच कराई जाए तो मालूम होगा कि उस खेत में शक्कर के परमाणु एक-दो क्विंटल से ज्यादा नहीं हैं, पर उससे कई गुना गुड़ हर साल पैदा होता है। यह खेत की मिट्टी में से ही नहीं, आकाश से आता है। वायु में करोड़ों टन शक्कर उड़ती-फिरती है, ईख का पौधा पत्तियों द्वारा श्वास लेता है और अपनी आवश्यकता की वस्तु उस वायु में से खींचकर शक्कर बना लेता है।

डॉक्टर लोग बताते हैं कि रोगों के कीटाणु एक प्रकार के जानदार प्राणी हैं और वे आकाश में उड़ते रहते हैं और जिस प्राणी को कमजोर देखते हैं, अपनी शिकार के उपयुक्त समझते हैं, उस पर आक्रमण कर देते हैं। तपेदिक, हैजा, आतशक आदि के संक्रामक रोगकीट, मक्खियों की तरह एक मनुष्य से उड़कर दूसरे पर पहुँचते हैं और उसे भी बीमार बना लेते हैं। प्लेग, कॉलरा, मलेरिया, चेचक, गरदन तोड़ बुखार आदि के रोगकीट मक्खियों की तरह झुंड के झुंड अरबों-खरबों की संख्या में उड़ते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान को दल-बल समेत जा पहुँचते हैं। यह कीटाणु आँखों से, इंद्रियों से दिखाई नहीं पड़ते, तो भी इस लोक में उसी प्रकार रहते, काम करते और जीते रहते हैं जैसे कि मनुष्य, पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े इस दृश्य लोक में जीवनयापन करते हैं।

भौतिक विज्ञान के शोधक, अन्वेषक और आविष्कारक जानते हैं कि अदृश्य जगत में बहुमूल्य पदार्थों का खजाना छिपा पड़ा है।

गैस, बिजली, रेडियो, टेलीविजन, परमाणु शक्ति आदि अदृश्य लोक में छिपी हुई शक्तियों को ढूँढ़ निकाला गया है। अब विज्ञान इस दिशा में प्रयत्नशील है कि अदृश्य सूक्ष्म पदार्थों को इच्छानुसार रूप में कैसे परिवर्तित कर लिया जाए।

किसान लोग जानते हैं कि वर्षा की बूँद के साथ आकाश से अन्य पदार्थ भी बरसते हैं। पौधे उन्हें पाकर अपनी जीवनी शक्ति उपलब्ध करते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान के आचार्य जानते हैं कि अमुक स्थान की आबहवा में अमुक तत्त्वों के परमाणु अधिक मात्रा में होते हैं, वहाँ रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक होता है। स्वास्थ्य सुधार के लिए लोग उन स्थानों में जाते हैं, जहाँ की आबहवा में उपयोगी परमाणु होते हैं। यह सब बातें बताती हैं कि अदृश्य लोक भी इस दृश्यलोक की तरह ही है, उसमें भी सजीव और निर्जीव सत्ताएँ प्रचुर परिमाण में मौजूद हैं।

हर एक वस्तु काल-चक्र के फेर से कभी दृश्य कभी अदृश्य हो जाती है। भाप से पानी, पानी से भाप, इस चक्र में पड़ा हुआ पानी दृश्य और अदृश्य होता है। मनुष्य भी जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म धारण करता है। जब तक स्थूल शरीर है तब तक वह इस लोक में है, जब शरीर छूट गया तो परलोक में चला जाता है। जीव को लोक और परलोक दोनों में रहना पड़ता है, दोनों ही उसके घर हैं, इसलिए परलोक के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। लड़कियाँ अपने पिता के घर रहकर भी पतिगृह में सामने आने वाली स्थिति की जानकारी प्राप्त करतीं और तैयारी करतीं हैं, क्योंकि वे जानती हैं कि हमें मायके की भाँति ससुराल से भी काम पड़ेगा। हमें भी चाहिए कि निकट भविष्य में जिस लोक में जाना है, उसका ज्ञान प्राप्त करें।

परलोक कहाँ है ? वह कितनी दूर किस स्थान पर, कितने बीच में है ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि लोक और परलोक की सीमाएँ आपस में मिली हुई हैं। पृथ्वी के ठोस धरातल को छोड़कर जहाँ से पोला आकाश शुरु होता है, वहाँ से ही सूक्ष्म लोक या परलोक आरंभ हो जाता है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति करीब एक हजार किलोमीटर चारों ओर मानी जाती है। यही घेरा परलोक का है। कारण यह है कि जिन रासायनिक तत्त्वों से पृथ्वी का संबंध है, जो पृथ्वी पर प्रकट होते रहते हैं, वे अदृश्य होकर भी पृथ्वी के आकर्षण की सीमा के भीतर रहते हैं। पृथ्वी उन्हें खींचे रहती है, अपनी परिधि से बाहर नहीं जाने देती। वे परमाणु इस भूलोक के ही अदृश्य अंश हैं, इसलिए उनका आकर्षण भी भूलोक से ही जुड़ा रहता है। अन्य ग्रह-उपग्रहों के जो रासायनिक तत्त्व हैं, वे इस लोक के तत्त्वों से भिन्न हैं, इसलिए भी यहाँ के परमाणु का वहाँ कोई मेल नहीं बैठता और वे विजातीय होने के कारण किसी दूसरे लोक में प्रवेश नहीं कर पाते।

यहाँ के सजीव प्राणी भी मर्त्यलोक के बाद परलोक में ही रहते हैं, क्योंकि उनका सूक्ष्म शरीर मरने के बाद भी बना रहता है। इस शरीर में भी स्थूल शरीर की भाँति ही ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं। अतएव देखने, सुनने, चखने, सूँघने और स्पर्श करने की शक्ति भी रहती है। वे पदार्थ जिन्हें हमारी ज्ञानेंद्रियाँ सुगमतापूर्वक अपना सकती हैं, इसी लोक में हैं। मछली की इंद्रियाँ अन्यत्र जीवित नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार भूलोकवासी जीवों का सूक्ष्म शरीर भी भूलोक के परलोक में ही रहता है। संक्षेप में इसे यों कह सकते हैं कि पृथ्वी की सतह से लेकर जहाँ तक उसकी आकर्षण शक्ति की सीमा है, उस आकाश में परलोक है। जो दिखाई पड़ता है, वह स्थूल है और जो अदृश्य है,

वह सूक्ष्म है। भूतल से संबंध रखने वाले सजीव और निर्जीव पदार्थ जब अपने सूक्ष्म या अदृश्य रूप में होते हैं, तब इसी परलोक में रहते हैं।

किसी अँधेरे मकान में एक छोटे छेद से होकर धूप आ रही है तो उस मकान में भीतर उड़ने वाले धूलि के परमाणु उस धूप में पहुँचकर भली प्रकार चमकते हैं। ये धूलि कण इधर-उधर नीचे-ऊपर स्वच्छंदतापूर्वक आकाश में विचरण करते रहते हैं। सूक्ष्म परमाणु इन धूलि कणों से असंख्य गुने छोटे एवं हल्के होते हैं। वे इतने छोटे होते हैं कि बाल की नोंक पर हजारों की संख्या में आ सकते हैं। वे बढ़िया से बढ़िया सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी दिखाई नहीं पड़ते। इतने हल्के परमाणुओं को आकाश में उड़ते फिरने में कुछ कठिनाई नहीं होती। न तो उन्हें ठहरने के लिए किसी सहारे की जरुरत पड़ती है और न नीचे गिर पड़ने का भय रहता है। बादलों को ही देखिए, वे भाप का एक भारी बोझ होते हैं, पर जब तक वे पानी के भार से अत्यंत ही भारी न हो जाएँ, आकाश में स्वच्छंदतापूर्वक उड़ते फिरते हैं। जब इतने भारी बादल बिना किसी सहारे के उड़ते फिरते हैं तो उन अत्यंत सूक्ष्म परमाणुओं को ठहरने के लिए सहारे की क्या आवश्यकता होगी?

परलोक किसी पर टिका हुआ नहीं है, यह निराधार आकाश ही परलोक है। पानी, गरमी, सरदी, शब्द, आकाश, ईथर आदि के तथा वनस्पति, खनिज एवं रासायनिक पदार्थों के सूक्ष्म निर्जीव परमाणु आकाश में छाए रहते हैं। इनमें जो अपेक्षाकृत अधिक भारी होते हैं, वे हवा के झोंकों के साथ इधर-उधर चलते फिरते हैं, जो अधिक सूक्ष्म होते हैं, उन पर आँधी-तूफान का भी कुछ प्रभाव नहीं होता। प्रकृति में जो अत्यंत सूक्ष्म प्रत्यावर्तन होता है, उससे प्रभावित होकर

ये सूक्ष्म परमाणु फिर स्थूल हो जाते हैं, शरीर धारण करके प्रकट हो जाते हैं। परा और अपरा प्रकृति की दो शक्तियाँ इस प्रभाव और लय के कार्य को करती रहती हैं।

जीव का प्राण-परमाणु, निर्जीव पदार्थों के परमाणुओं से बहुत अधिक सूक्ष्म है। निर्जीव पदार्थों के सूक्ष्म कण वैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन के रूप में प्राप्त कर लिए हैं, उनकी गतिविधि की भी जानकारी मिल गई है और उनका पृथक् स्वरूप देख लिया गया है, परंतु जीव के प्राण-परमाणु उनसे भिन्न हैं। वह धुँधली प्रकाश-ज्योति के रूप में होते हैं। योगियों ने उसका क्षेत्र हाथ के अँगूठे के बराबर अनुभव किया है। यह अविनाशी प्रकाश-परमाणु सुविस्तृत आकाश में बिना किसी विघ्न-बाधा के इधर-उधर विचरण किया करता है। निर्जीव पदार्थों के परमाणु उसे कुछ भी बाधा नहीं पहुँचाते। हाँ, वह अपनी इच्छाशक्ति के बल से जिन परमाणुओं को चाहता है, अपने लिए आकर्षित कर लेता है और अपनी सूक्ष्म कर्मेंद्रियों द्वारा उनका रसास्वादन करता है।

परलोक की क्या स्थिति है? उपरोक्त पंक्तियों को पढ़ने के बाद पाठक उसका कुछ-कुछ अनुमान लगा सकेंगे। भूतल से लेकर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से एक हजार किलोमीटर के घेरे में जो पोला आकाश है, यही परलोक है। संसार में जो भी पदार्थ मौजूद हैं, उनकी मूल सत्ता सूक्ष्म रूप से इस आकाश में उड़ती फिरती है। पृथ्वी पर जितना स्थूल पदार्थ मौजूद है, उनकी अपेक्षा असंख्य गुना पदार्थ सूक्ष्म लोक में उड़ता फिर रहा है। इसी पोले आकाश में जीवन के प्राण-परमाणु एक छोटी प्रकाश-ज्योति के रूप में उड़ते हैं। जैसे पृथ्वी पर असंख्य जीव-जंतु और पदार्थ रहते हुए भी सबके आने-जाने को निर्बाध रास्ते खुले

पड़े हैं, वैसे ही वे जीव तथा पदार्थ बिना कोई किसी से टकराए स्वेच्छापूर्वक आ जा सकते हैं। जैसे हम अपने घर में फैली चीजों में से जिसे चाहें उसे उठाकर उपयोग कर सकते हैं, वैसे ही परलोकवासी जीव वहाँ के पदार्थों को लेकर अपनी सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों का अभिरंजन करते हैं। यह अभिरंजन जब अनुकूल होता है तो सुख मिलता है, इसे स्वर्ग कहते हैं, यदि यह अभिरंजन प्रतिकूल पड़ता है तो उसे नरक कहते हैं।

हम अपनी पुस्तक "मरने के बाद हमारा क्या होता है" में बता चुके हैं कि जन्म भर सोते-जागते काम करते रहने के कारण जीवात्मा थक जाता है और मृत्यु के बाद कुछ समय तक वह निद्रा मग्न चेतन अवस्था में परलोक में रहता है। कुछ समय बाद जब वह निद्रा टूटती है तो वह जागृत होता है। उस अवस्था में उसका मस्तिष्क नहीं होता, केवल चित्त होता है। मस्तिष्क स्थूल शरीर का एक भाग था, शरीर संबंधी एवं सांसारिक समस्याओं के संबंध में सोचना-विचारना उसका काम था, चूँकि अब वह स्थूल शरीर नहीं रहा इसलिए मस्तिष्क भी उसी के साथ चला गया। सूक्ष्म शरीर में केवल चित्त रहता है। चित्त में इच्छा एवं अभिरुचि निवास करती है, सोचने-विचारने एवं तर्क करने की उसकी शक्ति नहीं होती।

पिछले जीवन में यदि उस व्यक्ति ने आत्महनन किया है, बुरे कामों में प्रवृत्त रहा है तो उसके पाप संस्कारों का बोझ उस जीवात्मा के चित्त पर पत्थर की तरह रखा रहता है। इस बोझ से वह अपने आपको दबता हुआ अनुभव करता और दुखी होता है। जैसे हम सोते समय दिल पर हाथ रखकर सो जाते हैं तो उसके बोझ से एक भयंकर जागृत स्वप्न दिखाई देने लगता है।

उस अर्द्ध निद्रित अवस्था में हाथ-पैर हिलाना चाहते हैं, पर हिलते नहीं, बोलना चाहते हैं, पर आवाज नहीं निकलती, बड़ा भय लगता है, चित्त पर धरे हुए पापों के बोझ से जीवात्मा की ऐसी ही दु:स्वप्न की सी अवस्था हो जाती है। उसे बड़े डरावने दृश्य दिखाई पड़ते हैं, पुराणों में बड़े रोमांचकारी ढंग से दु:ख और दंड से भरे हुए नरक का वर्णन किया गया है। चित्त पर रखा हुआ पापों का बोझ प्राय: वैसी ही नारकीय यातनाओं से भरे दु:खदाई स्वप्नों का सृजन करता है। जीव उसमें बड़ा क्लेश पाता है और अपने को नरक में पड़ा हुआ अनुभव करता है।

जैसे विवाह आदि खुशी के दिनों में स्वप्न में भी आनंद मंगल, उत्सव, बधाई, हर्ष, भेंट-मिलन के सुखदायक स्वप्न हम सबको दिखाई देते हैं, वैसे ही स्वप्नों का रसास्वादन परलोकवासी वे जीव करते हैं, जिनके चित्त पर शुभ कर्मों और सद्भावों के संस्कार जमे होते हैं। स्वर्ग के सुखों का धर्म ग्रंथों में सविस्तार वर्णन मिलता है। वैसे ही या उससे मिलते-जुलते सुखों के स्वप्न उन पुण्यात्माओं को दिखाई पड़ते हैं। वे सुख-स्वप्न जीव को बड़ा आनंद और उल्लास प्रदान करते हैं। उसे स्वर्ग का सुख अनुभव कराते हैं।

परलोकवासी जीव का चित्त ही उसका पथ-प्रदर्शन करता है। चित्त की प्रवृत्ति का निर्माण चिरकालीन संस्कारों के आधार पर होता है। जीवन भर मनुष्य जिस प्रकार के विचार और कार्यों में डूबा रहता है, जिन भले-बुरे, पुण्य-पाप या स्वार्थ-परमार्थ के संस्कारों को अपने में धारण करता रहता है, वे सब स्वभाव बन जाते हैं। लोक में भी यह स्वभाव ही प्रेरक होता है। मन और बुद्धि इस चित्त के स्वभाव के अनुकूल काम करती हैं। परलोक में तो यह चित्त पूर्णतया निरंकुश हो जाता है। लोक में जो

लोकलाज का, समाज की सम्मति का, प्रतिरोध का भय रहता है, जिससे मनचाही करने में झिझक होती है, परंतु परलोक में इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं है। इसलिए वह अपनी रुचि के अनुकूल पदार्थों को आकर्षित करके अपने निकट ले आता है और उनका रसास्वादन करता है।

जीव के प्राण-परमाणु में एक आकर्षण शक्ति होती है। जीवित अवस्था में जिसे इच्छा शक्ति कहते हैं, वही मृत्यु के उपरांत आकर्षण शक्ति बन जाती है। जीवित मनुष्य को पानी पीने की इच्छा हो तो मस्तिष्क पानी प्राप्त करने का उपाय सोचता है, पैर पानी के स्थान तक पहुँचा देते हैं, हाथ उस पानी को मुख तक ले जाते हैं, इस प्रकार वह इच्छा पूर्ण हो जाती है, पर सूक्ष्म लोक में उपाय, सोचने, चलने और उठाने की जरुरत नहीं पड़ती। इच्छा की आकर्षण शक्ति से इच्छित पदार्थों के सूक्ष्म परमाणु खिंचे चले आते हैं। जैसे अजगर सर्प एक स्थान पर बैठा हुआ ही जोर की श्वास खींचता है तो उसके आकर्षण से पेड़ों पर बैठे हुए और उड़ते हुए पक्षी खिंचे आते हैं और अजगर के मुख में चले जाते हैं। इसी प्रकार मृतात्मा की इच्छा, आकर्षण शक्ति अपने अनुरुप पदार्थों को खींच लेती है, या यों कहना चाहिए उसके अनुरूप उसी जाति के पदार्थ स्वयं आ-आकर उससे लिपट जाते हैं।

चित्त के संस्कारों को दो भागों में बाँट सकते हैं। एक धर्ममय दूसरे अधर्ममय। पुण्यात्मा और पापी दो ही श्रेणी के मनुष्य होते हैं। पापी मनुष्यों का चित्त तामसिक, नीच, घृणित, वासनाओं और इच्छाओं से भरा होता है, उसमें से नीचता भरी इच्छा तरंगें उठा करती हैं और वे अदृश्यलोक में नीच जाति के घृणित पदार्थों के परमाणुओं को आकर्षित करती हैं। वे खिंचकर चले आते हैं और उससे लिपट

जाते हैं। जैसे विष्ठा की बदबू मक्खियों को निमंत्रण दे-देकर अपने पास बुला लेती हैं, वैसे ही पापी का चित्त तामसिक, दुर्गंधित, जलाने वाले, छेदने वाले, पीड़ा उत्पन्न करने वाले, कुरूप पंच तत्त्वों को अपने पास बुला लेता है। खुले घाव का रूप देखकर दूर-दूर से मक्खियाँ उड़कर उस पर आ बैठती हैं और इस घाव को काट-काटकर प्राणी को दुःख देती हैं, वैसे ही पाप वासना के आकर्षण से हिंसा, भय, क्रोध, जलन, पीड़ा, बेचैनी उत्पन्न करने वाले तामसिक भौतिक पदार्थों के परमाणु उस जीव से आ लिपटते हैं, जिससे उसे जलाने, डुबाने, गाड़ने, कूटने, छेड़ने, काटने, चीरने, ऐंठने जैसी पीड़ा होती है, इंद्रियाँ घबराहट, मद, बेचैनी, तृषा का अनुभव करती हैं। इन परिस्थितियों में प्राणी बड़ा कष्ट पाता है। भयभीत कल्पना शक्ति और पीड़ादायक परिस्थिति दोनों के मिलने से वैसे ही भयंकर नरक के दृश्य सामने आते हैं जैसे कि पुराणों में वर्णन किए गए हैं।

जिन पुण्यात्माओं का चित्त सात्त्विकता की उच्च भावनाओं से सुसंस्कारित होता है, उनकी इच्छा तरंगें सतोगुणी हो उठती हैं, उनका आकर्षण अपनी जाति के पदार्थों को खींचकर इकट्ठा करता है। जैसे पुष्पों के आस-पास मनोहर रंगों की तितलियाँ उड़ती रहती हैं, भौंरे मधुर गुंजार करते रहते हैं। इस प्रकार उन पुष्पों की शोभा और भी बढ़ जाती है। धनवानों के पास अनेकों गुणी, प्रशंसक, सहायक, कलाकार, धर्मसेवक अपने आप पहुँचते हैं। जहाँ मीठा रखा हो, वहाँ चींटियाँ अपने आप आ पहुँचती हैं। उसी प्रकार सुसंस्कारित परलोकवासियों के पास सुखदायक, आनंदवर्द्धक, शांतिप्रद तत्त्वों के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं, जिनके संसर्ग से उस मृतात्मा को बड़े तृप्तिदायक, प्रसन्नता प्रदान करने वाले अनुभव

होते हैं। यह अनुभव लगभग वैसे ही आनंदमय होते हैं जैसे कि धर्म ग्रंथों में स्वर्ग के वर्णन आए हैं।

कुत्ता अपनी इच्छा से सूखी हड्डी चबाता है। उस चबाने में उसे मसूढ़ों में घाव और उन घावों का दर्द उपहार में मिलता है। मनुष्य अपनी इच्छा से कुमार्ग पर जाते हैं, कुसंस्कार एकत्रित करते हैं और नरक की यातनाएँ भोगते हैं। भंवरे अपनी इच्छा से पुष्प के पास जाते हैं और उसकी सुगंध का, नयनाभिराम सुंदरता का, मधुर मधु का रसास्वादन करते हैं, कवियों द्वारा प्रशंसित होते हैं। कुत्ता नरक-दुःख को और भौंरा स्वर्ग-सुख को प्राप्त करता है। दोनों ही अपनी इच्छा के धनी हैं। वह चाहे तो अपने चित्त को सुसंस्कारों से सुसज्जित करके ऐसा बना सकता है कि मरने के उपरांत परलोक में उसे स्वर्ग सुख का महाप्रसाद प्राप्त हो। वह चाहे तो अपने चित्त को कुकर्मों और कुविचारों से ऐसा दूषित बना सकता है, जिससे परलोक में दारुण दुःख देने वाले नरकों की ज्वाला में जलना पड़े।

स्मरण रखिए, दृश्य लोक की भाँति हमें परलोक में भी रहना होता है। इस लोक में विद्या, धन, स्वास्थ्य, चतुरता तथा सहयोग के आधार पर हम सुख-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं, परंतु परलोक में केवल "चित्त के संस्कार" ही संपत्ति रूप होते हैं। यदि वे संस्कार पापमय हुए तो नरक की यातना भुगतनी पड़ती है और यदि पुण्य-मय हुए तो बड़े आनंद में वह समय गुजरता है। चित्त पर एक दिन में संस्कार नहीं जमते वरन् बहुत समय तक जो विचार और कार्य साथ रहते हैं, वे ही संस्कार बनते हैं। हमें चाहिए कि सदैव पुण्य के, परमार्थ के, सतोगुणी विचारों को मस्तिष्क में रखें, सदा सात्त्विक शुभ कर्म करें, जिससे हमारा चित्त सुसंस्कारी होकर मृत्यु के उपरांत परलोक में आनंदमय स्वर्गीय स्थितियों को प्रदान करे।

स्वःलोक

पीछे के पृष्ठों पर भूःलोक और भुवःलोक का वर्णन कर चुके हैं। तीसरा लोक स्वःलोक है। अपने आप में, अपने अंतःकरण में एक जबरदस्त लोक मौजूद है। उस लोक की स्थिति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसके सामने भूःलोक और भुवःलोक तुच्छ हैं। निस्संदेह बाहर की परिस्थितियाँ मनुष्य को आंदोलित, तंरगित तथा विचलित करती हैं, परंतु संसार के समस्त पदार्थों का जितना भला या बुरा प्रभाव होता है, उससे अनेक गुना प्रभाव अपने निज के विचारों तथा विश्वासों द्वारा होता है।

गीता में कहा है—मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र और स्वयं ही अपना शत्रु है। कोई मित्र इतनी सहायता नहीं कर सकता जितनी कि मनुष्य स्वयं अपनी सहायता कर सकता है। इसी प्रकार कोई दूसरा उतनी शत्रुता नहीं कर सकता, जितनी कि मनुष्य खुद अपने आप अपने से शत्रुता करता है। अपनी कल्पना शक्ति, विचार और विश्वास के आधार पर मनुष्य अपनी एक दुनिया का निर्माण करता है। वही दुनिया उसे वास्तविक सुख-दुख दिखाया करती है।

एक व्यक्ति सुनसान रात में मरघट के पास से निकलता है। उसके मन में कोई आशंका नहीं, तारागणों की सुंदरता निहारता हुआ, रात्रि की नीरवता और शीतलता को निरखता हुआ, मंद स्वर से गीत गुनगुनाता हुआ खुशी-खुशी चला जाता है। दूसरा व्यक्ति उसी रास्ते जाता है तो मरघट में भूत लोटते दिखाई पड़ते हैं, झाड़ियों में से मसानी, चुड़ैलें झाँकती दीखती हैं, उनके मारे थर-थर पैर काँपने लगते हैं, कंठ सूख जाता है, निगाह चूकने से एक पेड़ के ठूँठ से टकरा जाता है। बस भूत के भयंकर आक्रमण का प्रत्यक्ष

दृश्य दिखाई देता है। वह बीमार पड़ जाता है, महीनों चारपाई सेता है, मुश्किल से अच्छा हो पाता है या मर जाता है। रास्ता वही था, रात वही थी, एक आदमी खुशी-खुशी उसी रास्ते चला आया, दूसरे आदमी की जान पर बन आई। यह भेद क्यों हुआ? इसका कारण मनुष्यों की भिन्न मानसिक स्थिति थी। जिसके मन में भय उत्पन्न हुआ, वह भय ही उसकी छाती पर भयंकर मसान बनकर चढ़ बैठा और उसे प्राणघातक संकट में फँसा दिया।

रस्सी को साँप समझकर अनेक आदमी भयभीत होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। चूहे के काट खाने पर अपने आप को साँप का काटा समझकर कई मनुष्य मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। साधारण रोग को असाध्य रोग मानकर अनेक रोगी घबरा जाते हैं और घबराहट ही उसकी जान की ग्राहक बन जाती है। यह आफत के पहाड़ कौन ढहाता है? मनुष्य अपने आप अपने विचार बल से उन आफत के पहाड़ों का निर्माण करता है और खुद अपने ऊपर पटककर स्वयंमेव चकनाचूर हो जाता है। मनुष्य के मन में प्रचंड शक्ति भरी हुई है। वह इस शक्ति द्वारा अपने लिए अत्यंत अनिष्टकर और अत्यंत उपयोगी तथ्य निर्मित कर सकता है।

हर मनुष्य की अपनी एक अलग दुनिया होती है। जानकारी, इच्छा, प्रभाव एवं कल्पना के आधार पर हम अपनी मनोभूमि का निर्माण करते हैं। यह मनोभूमि ही अपनी दुनिया है। इसमें जैसे इरादे, मनसूबे, विश्वास जम जाते हैं, उसी दृष्टिकोण से संसार के समस्त पदार्थों को वह देखता है। आँखों पर पीला चश्मा पहन लेने से दुनिया पीली दिखाई पड़ती है और नीला चश्मा पहन लेने से हर चीज नीली दिखाई पड़ती है। साधुओं की दृष्टि में यह संसार परमात्मा की पुनीत प्रतिज्ञा है, सिंह की दृष्टि में सब मनुष्य स्वादिष्ट

मांस के चलते-फिरते लोथड़े हैं, दुकानदारों की दृष्टि में ग्राहक, वेश्या की दृष्टि में व्यभिचारी, कलार की दृष्टि में नशेबाज इस दुनिया में भरे हुए हैं। भीतरी मन की दुनिया जैसी होती है बाहर की दुनिया भी उसी के अनुरूप दिखाई देने लगती है।

मनुष्य की अपनी रुचि जिधर होती है, उधर ही उसका मस्तिष्क ढूँढ़-खोज जारी रखता है और यह एक तथ्य है कि जो कुछ खोजा जाता है, वह मिलता है। अपने स्वभाव और विचारों के मनुष्यों को, स्थानों को, वातावरण को, उसकी अदृश्य चेतना ढूँढ़ती रहती है और धीरे-धीरे उसे अपने अनुकूल वातावरण मिल जाता है। चोरों को अपने साथी अन्य चोरों का सहयोग हर जगह मिल जाता है और वे चाहे कहीं चले जाएँ, चोरी करने का अवसर या स्थान भी मिल जाता है। इसी प्रकार भले-बुरे सभी प्रकृति के मनुष्य अपने रुचिकर स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। सांसारिक परिस्थितियाँ दोनों ही प्रकार की होती हैं। सात्त्विक परिस्थितियों में सुख-शांति, प्रसन्नता तथा तृप्ति का अनुभव होता है। इसके विपरीत तामसिक परिस्थितियों में क्लेश, कलह, अशांति, दुख, दारिद्रय तथा असंतोष छाया रहता है। चोर स्वभाव का मनुष्य चोरी करेगा, फलस्वरूप उसे भय, अशांति, निंदा, अविश्वास, राजदंड एवं कर्म के कठोर परिपाक का भागी बनना पड़ेगा। इसी प्रकार सदाचारी स्वभाव का मनुष्य सत्कर्म करेगा और फलस्वरूप प्रसन्नता, संतोष, प्रशंसा, विश्वास, स्वास्थ्य एवं समृद्धि प्राप्त करेगा। चोर को अपने स्वभाव के लोगों के बीच रहना पड़ेगा और उनका व्यवहार उसके साथ वैसा ही दुखदायक रहेगा जैसा दुष्टों के साथ दुष्टों का रहता है। इसके विपरीत सज्जन पुरुष के समीपवर्ती लोग भी वैसे ही होंगे और उनका व्यवहार वैसा ही संतोषजनक रहेगा जैसा कि सज्जनों का होता है।

चोर और सदाचारी को जो सांसारिक परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, वह एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न एवं विपरीत हैं, परंतु इसका मूल कारण मनुष्य का अपना मन है। वह चोर स्वभाव को अपनाए या सदाचार की ओर झुके, यह पूर्णतया उसकी इच्छा के ऊपर निर्भर है। मन:लोक का जैसा निर्माण किया जाता है, बाहरी दुनिया वैसी ही बन जाती है। मन में यदि शांति है तो बाहर भी शांति का वातावरण होगा। यदि मन में आकुलता है तो बाहर भी आकुलता से भरी हुई घटनाएँ चारों ओर मंडरा रही होंगी। जिसने मन:लोक में स्वर्ग स्थापित कर लिया है, उसके लिए इस संसार में सर्वत्र स्वर्ग है। जिसके मन में नरक है, उसे सब ओर नरक की ज्वाला जलती हुई दृष्टिगोचर होती रहेगी।

संसार के समस्त दु:ख मिलकर मनुष्य को उतना दुखी नहीं कर सकते जितना कि भीतर के अंतर्द्वंद्व उसे दुखी करते हैं। मृत्यु स्वयं उतना कष्ट नहीं देती, जितना कि मृत्यु का भय दुखी बनाता है। व्यापार में घाटा हो जाने पर भी एक व्यापारी के सामने ऐसा अवसर नहीं आता कि उसे जीवनयापन में असुविधा हो, तो भी वह इतनी चिंता करता है कि सूखकर काँटा हो जाता है। उस घाटे वाले व्यापारी की जो स्थिति है, उससे भी बहुत गिरी हुई स्थिति के मजदूर हँसते-खेलते प्रसन्नता का जीवन बिताते हैं। घाटे वाले व्यापारी को सांसारिक विपत्ति वास्तव में नहीं आई, केवल उसके मन में विपत्ति की एक झाड़ी उग आई। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, शोक, चिंता, कुढ़न, निराशा, भय, आशंका, प्रतिहिंसा, स्पर्धा आदि दुर्भावों के कारण कितने ही मनुष्य बुरी तरह व्याकुल रहते हैं, उनके मन में सदा एक बेचैनी, आकुलता, अशांति एवं पीड़ा उठती रहती है, जिनके कारण उनका मन:लोक बहुत ही नीरस, गंदा, शुष्क, धुँधला एवं अंधकारपूर्ण हो जाता है। उन्हें हर घड़ी अशांति घेरे रहती है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, छल, पाखंड, असंयम, शोषण, अपहरण, दुराचार, व्यभिचार आदि के कुविचार एक प्रकार के मानसिक शत्रु हैं। वे मन:लोक में निशाचरों की भाँति छिपे बैठे रहते हैं और जब भी अवसर मिलता है, दल-बल सहित पूरी तैयारी के साथ निकल पड़ते हैं और जीवन के सुकोमल तुंतुओं को अस्त-व्यस्त कर डालते हैं। जैसे पेट में कोई विषैला पदार्थ पहुँच जाए तो वहाँ बड़ी जलन होती है, दस्त या उलटी होने लगती है। रक्त में कोई विषैला विजातीय पदार्थ पहुँच जाए तो फोड़े-फुंसी, चकत्ते, कोढ़ आदि पैदा हो जाता है। मांस में काँटा घुस जाए तो जब तक वह निकल नहीं जाता निरंतर पीड़ा होती रहती है। ठीक यही हाल इन कुविचार रूपी तामसिक, नीच, विजातीय, दानवों के मन:लोक में घुस जाने से होता है, यह कुछ न कुछ खुद-बुद किया ही करते हैं। आँख में पड़ी हुई कंकड़ी की भाँति वे अंत:चेतना को हर समय घायल ही करते रहते हैं। जैसे किसी आदमी के मर्म छिद्रों में लाल मिर्चों की बुकनी भर देने के बाद वह तड़पता फिरता है, चैन और आराम उसके लिए स्वप्न हो जाता है, वैसे ही दुखद भावों को अंत:करण में स्थान देने से आत्मा में तीव्र जलन होती रहती है, शांति के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मानसिक नरक ही कही जाएगी।

मानसिक स्वर्ग का अर्थ है—अपने अंत:करण में सात्त्विक विचारों, सद्भावों और सद्गुणों को धारण करना। ईमानदारी की पवित्रता-हिम-सी शीतल, पुष्प-सी कोमल, चंदन-सी सुगंधित और नवनीत-सी स्वच्छ होती है। उसे धारण करते ही आत्मा को बड़ी राहत मिलती है। हिमालय की तपोभूमि में नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य देखते हुए कंद मूल फल खाते हुए, भगवती भागीरथी के तट पर निवास करने

वाले तपस्वियों को जो शांति मिलती है, उसी शांति को हम ईमानदारी की पवित्रता ग्रहण करके प्राप्त कर सकते हैं। सच्चा मनुष्य विश्वास करता है—"ईमानदारी का पवित्र जीवन ही मुझे जीना है, मैं सच्चाई और नेकी से भरे हुए ही अपने विचार रखूँगा, न्याय के ऊपर ही मेरी जीवन नीति निर्भर रहेगी, मैं सत्य को ही सोचूँगा, सत्य के आधार पर ही विचार करूँगा, भलाई, नेकी, उदारता और क्षमा का आश्रय ग्रहण करूँगा, कुविचार, पाप, द्वेष और तुच्छ स्वार्थों से ऊँचा उठकर आध्यात्मिक जीवन जीऊँगा।" ये भावनाएँ उसके अंत:करण में सात्त्विकता का शीतल झरना प्रवाहित कर देती हैं।

सत्य, प्रेम और न्याय के जीवन तंतुओं को झंकृत करते ही आत्मा में एक मधुर संगीत बजने लगता है। पवित्रता का आध्यात्मिक संगीत ही भगवान कृष्ण की त्रिभुवन मोहिनी मुरली का मधुर वेणु नाद है। इसका रस जिसने अनुभव किया है, वह धन्य हो गया है। आत्मा पवित्र है, उसका मनुष्य के लिए संदेश है कि "पवित्रता को विचार और कार्यों में ओत-प्रोत करें।" यह ईश्वरीय संदेश जिसने सुन लिया, वह बड़ भागी है, जिसने सुनकर हृदयगंम कर लिया और तदनुकूल आचरण करना आरंभ कर दिया, वह परमात्मा का सच्चा भक्त है। ऐसे भक्तों के बीच में ही भगवान खेला करते हैं। जिनका हृदय पवित्रता की भावनाओं से भरपूर है, वह ईश्वरीय लीलाओं का क्रीड़ा क्षेत्र है। महात्मा ईसा कहा करते थे कि इस पृथ्वी का स्वर्ग भोले बालकों में मौजूद है। सचमुच जिनका हृदय बालकों की तरह कोमल एवं पवित्र है, वे स्वयं स्वर्ग रूप हैं। स्वर्ग में जाने की उन्हें कुछ भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिन तथ्यों के आधार पर स्वर्ग के सुख का निर्माण होता है, वे दृश्य उसके हृदय में मौजूद हैं और हर घड़ी स्वर्ग के सुख को उत्पन्न करते रहते हैं।

जो दूसरों को कष्ट में देखकर दया से द्रवित हो जाता है, जो असहायों की सहायता के लिए सदा तत्पर रहता है, जो संसार के सुख में अपना सुख अनुभव करता है, दूसरों को हानि पहुँचाने की जिसे कभी इच्छा नहीं होती, सत्य की बढ़ोत्तरी देखकर जिसे आंतरिक सुख होता है, जिसके लिए पर-स्त्री माता के तुल्य है, जो पर-धन को धूलि के तुल्य समझता है, इंद्रियों को जो मर्यादा से बाहर नहीं जाने देता, चुगली, निंदा, ईर्ष्या एवं कुढ़न से जो दूर रहता है, संयम जिसका व्रत है, प्रेम करना जिसका स्वभाव है, मधुरता जिसके होठों से टपकती है, स्नेह एवं सज्जनता से जिसकी आँखें भरी रहती हैं, जिसके मन में केवल सद्भाव ही निवास करते हैं, अनीति की ओर झुकने का जिसे कभी लालच नहीं आता। सादगी, सरलता, शिष्टता जिसके रहन-सहन की एक अंग होती हैं, ऐसे पवित्र आत्मा व्यक्ति इस लोक के देवता हैं। वे जहाँ रहेंगे, छाया की तरह उनका स्वर्ग उनके साथ रहेगा।

अंत:करण की शांति बाहरी दुनिया को स्वर्गीय आनंद से परिपूर्ण बना देती है। जिसके मन में सात्त्विकता है, उसे दूसरों का धन, वैभव, ज्ञान, रूप, यौवन देखकर प्रसन्नता होगी कि परमात्मा के इस पुनीत उद्यान का एक पौधा सुविकसित तथा पल्लवित हो रहा है। उस नयनाभिराम दृश्य से शांत पुरुष का हृदय तृप्त एवं प्रफुल्लित हो जाता है, परंतु जिस मन में अशांति व्याप रही है, ईर्ष्या की डायन नंगा नृत्य कर रही है, उसे दूसरों की बढ़ोत्तरी नहीं सुहाती। भीतर-ही-भीतर भारी कुढ़न होती है और उस कुढ़न की अग्नि से उसकी छाती भभकने लगती है। जिसकी बढ़ोत्तरी हो रही है, उसे नीचा दिखाने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र रचता है और अनिष्ट के पथ पर अग्रसर होता है।

जो क्रोधी है, उसे दूसरों की ओर से क्रोधपूर्ण व्यवहार अपने ऊपर होता दृष्टिगोचर होगा। जो अनुदार है, उसके साथ में अन्य व्यक्तियों का अनुदारतापूर्ण व्यवहार होगा। झूठे और लबार व्यक्ति जहाँ जाएँगे वहीं देखेंगे कि उनके ऊपर अविश्वास एवं निंदा की बौछार हो रही है। व्यभिचारी व्यक्ति को भले घरों में प्रवेश नहीं होने दिया जाता। चुगलखोर और यहाँ की वहाँ करने वालों के सामने लोग अपने मन की बात नहीं करते। बेईमान आदमी के कार्यों को लोग अविश्वास के साथ देखते हैं और जब तक अनेक प्रकार की जाँच-पड़ताल नहीं कर लेते, तब तक भरोसा नहीं करते। इस प्रकार अपमानजनक व्यवहार दूसरों की ओर से होते देखकर आमतौर से लोग मन ही मन कुड़कुड़ाते हैं और जमाने को, युग को, लोगों को, दुनिया को दोष देते हैं, परंतु वे अपने निजी दोषों को देखना भूल जाते हैं। वास्तव में अपने निजी दोष असुखकर, अप्रिय, अपमानजनक, संघर्षमय वातावरण उत्पन्न करते हैं। यदि अपने हृदय में सात्त्विकता की पर्याप्त मात्रा विद्यमान हो तो दुनिया की ओर से अधिकांश आक्रमण तो अपने आप ही बंद हो जाते हैं। जो थोड़े बहुत आक्रमण नितांत दुष्टों की ओर से किए जाते हैं, वे प्रायः असफल होते हैं। यदि उन आक्रमणों से कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो वह धर्म-प्रतिरोध करता है। इन आक्रमणों या प्रतिरोधों से उसकी मानसिक शांति नष्ट नहीं हो पाती।

दुनिया में केवल कृतघ्न, अन्यायी, शोषक, स्वार्थी ही नहीं हैं, उसमें भले, सज्जन, दयालु, उपकारी और परमार्थी भी हैं। हम देखते हैं कि लोग सज्जनों का काफी आदर करते हैं, उनकी बात को मानते हैं, उनकी इच्छा पर बड़े-बड़े त्याग करने को तैयार हो जाते हैं। हम अपने अंदर शांति की स्थापना करें, सद्गुणों को अपनावें तो बाहरी

दुनिया में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो अपनी शांति भंग कर सके। भले मनुष्यों को दूसरों की ओर से सदा प्रशंसा, भलमनसाहत, विश्वास, सहयोग से परिपूर्ण मधुर व्यवहार ही उपलब्ध होता है। जिसके भीतर भलाई है, उसे बाहर भी भलाई के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

स्व:लोक का स्वर्ग अपने भीतर है। यदि हम प्रेम, उदारता, ईमानदारी और भलमनसाहत का व्यवहार दूसरों से करें तो दूसरों के हृदयों में से भी वैसी ही आवाज हमारे लिए आएगी। अपने मन में पवित्रता, निष्कपटता, सत्यता, संयम एवं निस्वार्थता के भाव विद्यमान हों तो वे सद्भाव ही अपने को सदा प्रफुल्लित एवं संतुष्ट रख सकते हैं। बारहसिंगा की नाभि में कस्तूरी होती है, वह अपने ही अंदर नंदनवन की सुगंधि का रसास्वादन करता है। जिस सुगंध के लिए दूसरे लोग तरसते हैं और प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के उपाय करते हैं, वह बारहसिंगा को अपने अंदर ही मिल जाती है। वह अपनी मस्ती में खुद ही मस्त हुआ उछलता फिरता है।

माल की मस्ती से अधिक ख्याल की मस्ती होती है। संसार की वस्तुएँ मनुष्य को इतना संतुष्ट नहीं कर सकतीं, जितना कि विचारों के धन से वह संतुष्ट हो जाता है। एक संत का वचन है कि "जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।" श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में वर्णन आता है कि "देवता लोग अमृत का घड़ा लेकर परीक्षित के पास पहुँचे कि कथा रूपी अमृत दे दीजिए और यह शरीर को अमर करने वाला अमृत आप ले लीजिए।" परीक्षित ने अमृत को काँच और कथा को मणि बताकर देवताओं के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सचमुच विचारों का-ख्यालों का संतोष भौतिक पदार्थों के संतोष से कहीं अधिक मूल्यवान है।

स्वर्ग को ही लीजिए। स्वर्ग किसी ने प्रत्यक्षत: देखा नहीं है तो भी उसमें प्राप्त होने वाले सुखों के विचार से प्रभावित होकर लोग दान-पुण्य, जप-तप आदि के बड़े-बड़े त्याग करते हैं। स्वर्ग के ख्याल की मस्ती के सामने प्रत्यक्ष पड़ी हुई संपदा को लोग ठुकरा देते हैं। उसका दान या त्याग कर देते हैं। देश, धर्म, जाति एवं कर्तव्य के लिए लोग अपने प्राण सरीखी सर्वोपरि वस्तु को तिनके के समान निछावर कर देते हैं। भौतिक वस्तुओं में जो आनंद है, वह भी ख्याल का ही आनंद है। ख्याल के अभाव में वस्तुएँ उतनी ही रुचिकर सिद्ध नहीं हो सकतीं। सोने का कंठा भैंस के गले में पहना दिया जाए और मनुष्य के गले में भी पहनाया जाए तो उससे मनुष्य प्रसन्न होगा, परंतु भैंस पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा। इस अंतर का कारण केवल ख्यालों के भाव का अभाव है। बकरी को संगीत सम्मेलन में ले जाया जाए, वह शब्दों को सुनेगी तो जरूर, पर उसके मन में मनुष्य जैसी तरंगें न पैदा होंगी। ऊँट को सिनेमा दिखाया जाए तो उसकी आँखें तो वही देखेंगी जो मनुष्य की आँखें देखती हैं, पर ऊँट को मनुष्य जैसा मनोरंजन न होगा। भौतिक वस्तुओं में भी कुछ सुख नहीं है, केवल एक प्रकार के आधार पर लोग, उसमें सुख का आरोपण करते हैं और उस आरोपण के ही आधार पर प्रसन्नता उपलब्ध करते हैं।

एक मनुष्य मांस-मदिरा खाते समय बहुत ही संतुष्ट होता है। दूसरा मनुष्य उस आहार से अत्यंत घृणा करता है। इस आहार का एक टुकड़ा भी मुख में चला जाए तो उसे अपार दु:ख होगा। एक मनुष्य वेश्या गृह में स्वर्ग सुख अनुभव करता है, दूसरे के लिए वही स्थान नरक की नाली के समान है। एक के लिए शहर रुचिकर और देहातें ऊजड़ जैसी सुनसान हैं, दूसरे को शहर की गंदगी से घृणा

होती है। वह शहर छोड़कर देहात में जाता है। सभी ओर देखिए, संसार की किसी भी वस्तु में वस्तुत: सुख नहीं है। कल्पना शक्ति द्वारा हम जिस वस्तु में सुख मान लेते हैं, उसी में सुख मिलने लगता है। कल्पना और विचारधारा ही सुख-दुख की जननी है। यही कल्पना-विचारधारा जब जड़ पदार्थों से टकराना छोड़कर आत्माभिमुख हो जाती है तो अपने सद्‌गुण ही आनंद के केंद्र बन जाते हैं। सत्य की साधना, कर्तव्यनिष्ठा, सेवा परायणता, पवित्रता एवं सात्त्विकता के दैवी महत्त्व का जब मनुष्य को ठीक-ठीक भान हो जाता है तो सात्त्विकता के विचार और कार्यों में उसे इतना आनंद आता है, जितना कि इस विश्व के किसी भी पदार्थ में कहीं नहीं है। योगी जन जिस आनंद को परमानंद कहते हैं, जिसे प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य बताते हैं, वह ख्याल की मस्ती ही है। अनुभव ने भली प्रकार बता दिया है कि माल की मस्ती से ख्याल की मस्ती में असंख्य गुना रस है।

स्व: लोक का स्वर्ग अपने अंदर है, इसे अब अपने अंदर से आविर्भूत करना होगा। सद्‌गुणों, सद्‌भावों, सद्‌विचारों के सर्वोपरि महत्त्व को समझकर सात्त्विकता को अपने मन:लोक में अधिकाधिक मात्रा में भरना, उन विचारों में रमण करना, अपनी कार्य प्रणाली में दिन-दिन अधिक सात्त्विकता की मात्रा बढ़ाना, यह स्व: स्वर्ग के प्राप्त करने का मार्ग है। सांसारिक जीवन में कर्तव्य का संघर्ष करना लोक साधन के लिए अत्यंत आवश्यक है। दुष्टों के लिए दंड की, सज्जनों के लिए सहायता की व्यवस्था करना आवश्यक है। सज्जनों से मैत्री, दुखियों पर करुणा, सुखियों से प्रसन्नता और झगड़ालुओं से उपेक्षा की नीति अपनानी चाहिए। यह सब होते हुए भी अंत:करण में अखण्ड शांति बनाए रहनी चाहिए। ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट,

पाखण्ड, अन्याय, असत्य को मन में से निकालकर उसके स्थान पर सत्य, प्रेम, न्याय, परोपकार, संयम तथा ईश्वर परायणता को धारण करना चाहिए।

पवित्र हृदय में भगवान निवास करते हैं, इसलिए वह साक्षात् बैकुंठ लोक है, ऐसा बैकुंठ लोक जिसके अंदर मौजूद है वह स्वर्गवासी है। सतोगुणी मनुष्यों का अंत:करण साक्षात् स्वर्ग ही है। जिसे ऐसा हृदय प्राप्त है, वह स्वर्ग में ही है। स्व:लोक का स्वर्ग पवित्र आत्मा को स्वभावत: ही उपलब्ध होता है।

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा